गुरुवर्य आचार्यकल्प
१०८ श्री श्रुतसागर जी महाराज

की

पुण्यस्मृति

में

सादर समर्पित

- रूपचन्द्र कटारिया

श्री सुयकेवलीभणित

समय पाहुड

卐

आचार्य कुन्दकुन्द

वीर सेवा मन्दिर
नई दिल्ली-२

समय पाहुड

SAMAYA PAHUDA

प्रथम संस्करण–वीर निर्वाण सम्वत् २५२६,
ईस्वी सन् २००० : ११००

मूल्य : स्वाध्याय

प्राप्ति स्थान : प्रकाशक
वीर सेवा मन्दिर
२१, दरियागंज
नई दिल्ली–११०००२
दूरभाष : ३२५०५२२

मुद्रक : शकुन प्रिंटर्स, नई दिल्ली–२

प्रकाशकीय

वीर सेवा मंदिर का उदय आगम और जैनत्व की रक्षार्थ हुआ है। समय-समय पर इस संस्था से अनेकों महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। यहां से प्रकाशित 'अनेकान्त' पत्र सदैव ही हमारे पूर्व आचार्यों के मनतव्यों को उद्घाटित करने में तत्पर है। युगवीर पं. जुगलकिशोर जी मुख्तार इस संस्था के मुख्य संस्थापक थे उन्होंने अनेकों तलस्पर्शी प्रसंगों पर चिन्तन कर अपने मन्तव्य को प्रगट किया है। उनके पश्चात् पंडित परमानन्द जी ने और वर्तमान में पंडित पद्मचन्द्र शास्त्री ने इसी परम्परा को आगे बढ़ाया है।

कुन्दकुन्द आचार्य प्रणीत 'समयसार' जैनियों का प्रमुख ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की टीका आचार्यश्री अमृतचन्द्र जी व आचार्य श्री जयसेन जी महाराज ने संस्कृत में की है। इस ग्रन्थ का चिन्तन-मनन अनेकों विद्वानों ने किया है। गाथा के मूल भावों को समझने में कई बार दिक्कतें आई हैं। श्री रूपचन्द कटारिया स्वध्यायी और चिन्तनशील व्यक्ति हैं। वे सदैव देव शास्त्र गुरु की श्रद्धा में समर्पित रहे हैं। उन्होंने अथक प्रयत्नों से ग्रन्थराज 'समय पाहुड' के मूल भावों के सम्बन्ध में अपने चिन्तन को स्पष्ट करने हेतु विविध आयाम दिए हैं। कटारिया जी के आग्रह पर **वीर सेवा मन्दिर** ने ग्रन्थराज के प्रकाशन का दायित्त्व स्वीकार किया है।

हमारी भावना है कि प्रबुद्ध पाठक इस पर अपना चिन्तन देकर अनुगृहीत करें ताकि मूलाचार्य के स्व-हृदयंगत मन्तव्यों का शुद्ध भाव उद्घाटित होने में सहायता मिल सके। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में कटारिया जी और वीर सेवा मन्दिर की ओर से किसी प्रकार का आग्रह नहीं है। ग्रन्थ प्रकाशन का उद्देश्य मात्र मूल गाथाओं के अर्थ को सही स्वरूप देना है। हमें आशा है कि पाठकों का सहयोग अवश्य मिलेगा।

शुभ कामनाओं सहित-

- सुभाष जैन

महासचिव, वीर सेवा मन्दिर

दो शब्द

ग्रंथराज समय पाहुड व्यवहार-निश्चय नय से नव पदार्थों का प्ररूपण करने वाला ऐसा ग्रंथ है जो आज जन-जन के स्वाध्याय का केन्द्र बन चुका है। हमारे विचार से इसकी जितनी टीकाएं अथवा हिन्दी व्याख्याएं अब तक हो चुकी हैं उतनी शायद ही किसी अन्य ग्रंथ की हुई हों, किन्तु कौन सी व्याख्या उपयुक्त और मूल आचार्य के सर्वांगीण भावानुकूल है-इसका निर्णय कठिन हो गया है। यही कारण है कि इसके विषय में विभिन्न मतभेदों का उदय हुआ है तथा भिन्न-भिन्न मान्यताएं प्रचलित हो गई हैं जिससे समाज में विभाजन तक का वातावरण बन गया है।

कहते हैं कि पहले इस ग्रंथ के स्वाध्याय का प्रचलन अधिक नहीं था। इसे मुनिगण ही पढ़ा करते थे और यह श्रावकों की दृष्टि से ओझल ही रहा। हमें स्मरण है कि एक बार पं. कैलाश चन्द्र जी शास्त्री जैसे विद्वान् ने कहा था-"हमारी बड़ी उम्र तक भी समय पाहुड ग्रंथराज को हमने नहीं पढ़ा था। अब बरबस कानजी स्वामी द्वारा चर्चा में आने पर इसे देखा है।" इसके बाद तो इसके स्वाध्याय की बाढ़ सी आ गई। आज स्थिति ऐसी बन गई है कि हर व्यक्ति अदृश्य आत्मा का ही कथन करने लगा है और उसने व्रताचरण को एक किनारे पर जा पटका है। अस्तु..........

आज पाठकों के हाथ में समय पाहुड का यह नवीन संस्करण प्रस्तुत है। इसके हिन्दी अनुवादकर्त्ता केकड़ी निवासी श्री रूपचन्द्र जी कटारिया हैं। स्मरण रहे कि राजस्थान में स्थित केकड़ी स्थान गत लम्बे समय से स्वाध्याय का केन्द्र रहा है। यह स्थान पं. धन्नालाल जी पाटनी प्रतिष्ठाचार्य, पं. मूलचन्द्र जी शास्त्री, पं. सुरेन्द्रकुमार जी सोनी, पं. दीपचन्द्र जी पाण्ड्या, पं. अमोलक चन्द्र जी पाण्ड्या तथा कटारिया परिवार के श्री मिलापचन्द्र जी, श्री रतनलाल जी आदि अनेक विद्वानों

का विद्याभ्यास एवं स्वाध्याय-केन्द्र रहा है। श्री रूपचन्द्र कटारिया उसी परिवार के स्वाध्यायी और चिन्तनशील व्यक्ति हैं। इन्होंने अनेक प्रसंगों में चिन्तनीय सूक्ष्म दृष्टि दी है। जैसे लिंग दंसण-ज्ञान-चारित्र है, उसके विपरीत समस्त लिंग कुलिंग हैं। व्यवहारनय भूतार्थ है, 'समय' शब्द का मुख्यार्थ आगम प्रासंगिक है, प्रतिक्रमण विषकुम्भ नहीं, अपितु अमृतकुम्भ है (नियमसार, ८२-८९ के अनुसार) आदि अनेक प्रसंगों को आगमानुसार ही माना है।

यह तो निर्विवाद है कि सभी टीकाकार मूल के अर्थ को समझने में अनेक स्थलों पर मतभेद लिए रहे हैं। मूलार्थ के विषय में ऐसे विरोधी प्रसंग की व्याख्याओं में टीकाकारों को लेकर किसी ने धवला टीकाकार वीरसेन स्वामी से प्रश्न किया कि महाराज! इन विरोधी प्रसंगों में कौन सा ठीक है? तो वीरसेन स्वामी ने कहा-"इस विषय में गौतम गणधर महाराज से पूछना चाहिए, (गोदमो एच्छ पुच्छेयव्वो-प्रस्तावना, धवला पृ. ५५) हम नहीं कह सकते।" तात्पर्य यह कि मूलकर्त्ता के भाव को कैसे जाना जा सकता है? फलतः जिसकी जैसी बुद्धि है वह तदनुसार ही कथन और प्रवृत्ति करता है, अतः मदभेद अवश्यम्भावी है। श्री कटारिया जी की अपनी प्रतिभा है। उन्होंने जो भी विषय अपनी समझ के हमारे समक्ष तर्क एवं पूर्वापर प्रसंगों के अनुसार आगमों के प्रकाश में रखे, हमने अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार उन्हें स्वीकार किया। हमें सन्तोष है कि श्री कटारिया जी के चिन्तन से हमें पूर्ण बल मिला और हमारा उपयोग समय पाहुड के चिन्तन में लगा।

श्री कटारिया जी ने अपने चिन्तन के द्वारा समय पाहुड़ की निम्न गाथा और उसके निहितार्थ की ओर हमारा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट किया -

ववहारो भूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्ध णओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो॥

अर्थ-व्यवहार भूतार्थ है और भूतार्थ शुद्ध की ओर ले जाने वाला कहा गया है। वस्तुतः सम्यग्दृष्टि जीव भूतार्थ आश्रित होता है।

समय पाहुड की अधिकांश प्रतियों में उक्त गाथा में 'ववहारोऽभूयत्थो' छपा है। हमारी दृष्टि से प्राकृत में संस्कृत व्याकरण का 'एङः पदान्तादति' सूत्र (नियम) का प्रयोग नहीं होता है। अतः गाथा में (ऽ) अकार है ही नहीं। वस्तुतः व्यवहार के बिना उपदेश अशक्य है, उपदेश के बिना सम्यग्ज्ञान अशक्य है और सम्यग्ज्ञान के बिना मोक्ष की प्राप्ति अशक्य है। अतः व्यवहार भूतार्थ है और भूतार्थ होने से मोक्ष का बीज रूप है। (देखिये समय पाहुड, गाथा ८)

उपर्युक्त गाथा में-'सुद्धणओ' विशेष रूप से विचारणीय है। हमारी दृष्टि से "शुद्धं प्रति नयतीति शुद्धनयः"-ऐसा अर्थ प्रतीत होता है और समय पाहुड कर्त्ता को भी यही अर्थ इष्ट रहा है। जिसे लोप कर एकान्तवादी निश्चय मात्र को सम्यक् (भूतार्थ) बतला रहे हैं।

पं. गजाधर लाल जी द्वारा कृत अनुवाद वाले समय पाहुड की सर्वप्रथम प्रकाशित (छपी) प्रति में उपर्युक्त गाथा में 'ववहारो भूयत्थो' ही छपा है। दोनों शब्दों के मध्य में अकार सूचक 'ऽ' चिन्ह नहीं है। किन्तु उन्होंने अमृतचन्द्राचार्य, जो संस्कृतज्ञ थे, के अनुसार अर्थ कर दिया जो हमें अभी तक भी नहीं जचा है। सापेक्षनय शुद्ध है और निरपेक्ष कोई नय शुद्धनय नहीं है तथा सापेक्षनय ही प्रमाण की ओर ले जाता है। इस प्रकार निश्चय और व्यवहारनय दोनों सापेक्ष होने से भूतार्थ हैं। छद्मस्थ जीव का ज्ञान नय और प्रमाणाधीन है तथा दोनों सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट हैं, अतः सम्यक् ज्ञान का अंश होने से वे प्रमाण व भूतार्थ हैं-पाठकगण स्वयं विचार करें।

न्याय के ग्रंथों में शुद्धनय कहीं पर नहीं दिखा है और शुद्ध भाव जिसे परम पारिणामिक भाव कहते हैं वे संसारी जीव के नहीं होने से उसके संवर निर्जरा का कारण नहीं होते।

आगम अथाह है। उसमें जैसे-जैसे अवगाहन किया जाय वैसे-वैसे रत्न मिलते हैं। मैं इस दिशा में श्री कटारिया जी के प्रयास की सराहना करता हूं। यह आवश्यक नहीं है कि विभिन्न रुचि के लोग एकमत हो सकें, किन्तु हमारी भावना है कि वे कटारिया जी के प्रयास से संचित किए गए विचारों से सार अवश्य ग्रहण करें।

इस पुण्य कार्य में श्री वैद्य राजकुमार जैन शास्त्री आयुर्वेदाचार्य जो सरल परिणामी, मृदुभाषी, विनयशील एवं चिन्तनशील व्यक्ति हैं, ने भी श्री कटारिया जी के साथ सतत सहयोग किया। उनका सहयोग एवं परिश्रम श्लाघनीय है।

- **पद्मचन्द्र शास्त्री**
वीर सेवा मन्दिर, नई दिल्ली

आमुख

समग्र जैन वाङ्मय में 'समय पाहुड' नामक ग्रंथ का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान में मुनिजनों एवं श्रावकों में स्वाध्याय के निमित्त जितना महत्व और प्रचलन 'समय पाहुड' नामक इस ग्रंथ का है उतना सम्भवतः किसी अन्य ग्रंथ का नहीं है। 'समय पाहुड' **दिगम्बर जैनाचार्य श्रीमत् कुन्दकुन्द** की एक ऐसी अप्रतिम रचना है जिसमें नव पदार्थों के श्रद्धान के माध्यम से जीव को मुक्ति प्राप्त करने का उपाय प्रतिपादित किया गया है। श्री कुन्दकुन्दाचार्य निःसन्देह ऐसे बहुश्रुत ज्ञानी थे, जिन्हें श्रुतकेवली भद्रबाहु से परम्परित समय पाहुड का पूर्ण ज्ञान प्राप्त था और उसी ज्ञान के आधार पर उन्होंने इस अनुपम ग्रंथ की रचना की थी। यह तथ्य समय पाहुड की निम्न प्रथम गाथा से स्वतः स्पष्ट है -

"वोच्छामि समय पाहुडमिणमो सुयकेवली भणियम्।"

इस ग्रंथ की अतिशय महत्ता के कारण ही अन्यान्य आचार्यों ने समय-समय पर विभिन्न भाषाओं में अनेक टीकाएं, व्याख्याएं, अनुवाद आदि किए हैं। उनमें से वर्तमान में जो टीकाएं उपलब्ध हैं उनमें सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रचलित विद्वत्तापूर्ण 'आत्मख्याति' नामक टीका है जो श्री अमृतचन्द्राचार्य के द्वारा रचित है। उस टीका को आधार मान कर परवर्ती अनेक विद्वानों, व्याख्याकारों एवं अनुवादकर्त्ताओं ने इसकी व्याख्याएं एवं अनुवाद किए जो प्राकृत की मूल गाथाओं की संस्कृत छाया के साथ मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल गाथाओं की छाया किसी अन्य विद्वान् के द्वारा की गई जिसके आधार पर श्री अमृतचन्द्राचार्य ने आत्मख्याति नामक टीका लिखी। इस प्रकार संस्कृत छाया के आधार पर टीका होने से अनेक स्थलों पर मूल गाथा के अभिप्रायार्थ से स्खलन हो गया लगता है यद्यपि श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं इस समय पाहुड को श्रुतकेवली-भणित कहा है तथापि आगम के पूर्वापर का विरोध होने से पश्चात्वर्ती टीककारों को कुन्दकुन्दाचार्य को सीमंधर स्वामी के समवसरण में जाकर परम्परित ज्ञान से अन्य आध्यात्म ज्ञान प्राप्त करने की बात कहनी पड़ी।

इस समय पाहुड में पीठिका के अनन्तर कथित निम्न गाथा अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट करती है -

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्ण पावं च।
आसव संवर णिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मतं॥

इस गाथा के अनुसार ही इस ग्रंथ में नव अधिकारों का प्रणयन हुआ है।

इस ग्रंथ में प्रतिपादित नव पदार्थों का सांगोपांग वर्णन आचार्य ने निश्चय और व्यवहारनय के आधार पर किया है। नय सदैव अंश को ग्रहण करते हैं और वे सापेक्ष होने से भूतार्थ हैं। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए आचार्य ने नव पदार्थों का विवेचन परक ज्ञान कराया है।

वर्तमान में समय पाहुड की जितनी भी हस्तलिखित पांडुलिपियाँ उपलब्ध हैं वे सब टीकाओं सहित हैं जिनमें अर्थ प्रतिपादन टीकाओं के आधार पर लगभग समान ही किया गया है। ऐसी एक भी पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं है जो मूल रूप में (टीका रहित) हो। हमें प्रयत्न करने पर दैवयोग अथवा हमारे पुण्योदय से श्रवणवेलगोल के शास्त्र भण्डार में समय पाहुड की ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ, जिसमें प्राचीन कन्नड़ लिपि में लिपिबद्ध मूल पाठ था। श्रवणवेलगोल के भट्टारक परमादरणीय श्री चारुकीर्ति जी महाराज की अनुकम्पा से प्राचीन कन्नड़ लिपि एवं भाषा के उच्च कोटि के ज्ञाता एक विद्वान् की सहायता से जब उस पाण्डुलिपि के मूल पाठ का मिलान वर्तमान में उपलब्ध समय पाहुड के पाठों से किया गया तो अनेक स्थलों पर हमें स्पष्ट पाठ भेद लक्षित हुआ। इसमें हमें ऐसा लगा कि समय पाहुड ग्रंथ की जो भी टीका-व्याख्या या अनुवाद अद्यावधि हुए हैं उनमें पाठ-भेद एवं गाथा भेद अवश्य ही मूल में भूल जान पड़ती है, जिससे वर्तमान में प्रकाशित समय पाहुड की समस्त प्रतियों में अनेक स्थलों पर आगम के स्खलन का आभास मिलता है, जबकि श्रवणवेलगोल स्थित प्रति के मूल पाठ सर्वथा परम्परित आगम के अनुकूल हैं। अतः

हमें यह प्रेरणा हुई कि हम समय पाहुड के मूल पाठ को आधार बना कर केवल प्राकृत भाषा का अनुसरण करते हुए उसका मात्र हिन्दी भाषानुवाद कर उसे स्वाध्याय के लिए सुलभ करावें। इसी के परिणामस्वरूप समय पाहुड का हिन्दी भाषानुवाद आपके समक्ष प्रस्तुत है।

समय पाहुड में अनेक स्थल ऐसे हैं जो अभी तक भी अस्पष्ट या अनसुलझे हैं और हम जिनका अर्थ समझने में असमर्थ रहे हैं जैसे-राग, दोष, मोह, सण्ण-सण्णादु, अज्झवसाण, बुद्धिववसाओ, अपदेससुत्तमज्झं इत्यादि। हमें 'समय' शब्द का वाच्यार्थ सम्यग्ज्ञान अधिक समीचीन लगता है और उसे आचार्य ने 'एयत्त विहत्त' कहा है। वह सम्यग्ज्ञान ही परमार्थ है (परमट्ठो खलु समओ) और उसे एयत्त-विभक्त सम्यग्ज्ञान का प्रतिपादन करने वाला होना चाहिए, जैसा कि 'प्रमाणनयैरधिगमः।' इसी प्रकार 'कालायस' शब्द का अर्थ लोहा किया गया है, जबकि प्राचीन ग्रन्थों में उसका अर्थ कांस्य प्राप्त होता है। 'णियल' शब्द बेड़ी अर्थ में प्रयुक्त है, जबकि 'न श्रूयते हेममयी कुरंगी' के समान सोने की बेड़ी भी नहीं सुनी जाती। राग दोस और मोह का प्रयोग स्थान-स्थान पर किया गया है तथा राग को प्रेय और दोस को द्वेष रूप में प्रतिपादित किया है। इसी आधार पर क्रोध-मान-माया-लोभ को घटाया है, जबकि भगवती आराधना में स्त्रीवेद, पुरुवेद और नपुंसक वेद को राग रूप और हास्य, रति, अरति, शोक, भय जुगुप्सा को दोस रूप माना गया है -

मिच्छत्त वेदरागा तहेव हासादिया य छद्दोसा।
चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भंतरा गंथा॥

- भगवती आराधना-१११२

- मिथ्यात्व, वेद राग, हास्य रति अरति, शोक, भय जुगुप्सा और चार कषाय ये चौदह अन्तरंग परिग्रह हैं।

इस प्रकार स्थान-स्थान पर वर्णित राग, दोस, मोह, कषाय कर्मबंध रूप हैं और अन्तरंग परिगृह होने से भावरूप भी हैं। 'एयट्ठ' शब्द का प्रयोग भी एकार्थवाची अर्थ में किया गया है, जबकि

उसका अर्थ एकत्र (एकस्थ) होना चाहिए। तदनुसार एक क्षेत्रावगाही अर्थ सुसंगत बैठता है।

अतः विद्वानों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि वे करणानुयोग एवं चरणानुयोग को दृष्टि में रखते हुए उन विषयों पर चिन्तन कर अपना दृष्टिकोण सुनिश्चित करें।

उसी प्रकार धम्मादि शब्द का अर्थ अजीव, धर्म-अधर्म द्रव्य होना चाहिये, जबकि टीकाकारों ने धर्म को पुण्य और अधर्म को पाप प्ररूपित किया है। समय पाहुड़ की वर्तमान में उपलब्ध प्रतियों एवं टीकाओं में हमें जो स्थल आगमानुकूल प्रतीत नहीं हुए उन पर विस्तारपूर्वक विचार करते हुए अपना दृष्टिकोण समय-समय पर आलेखों के माध्यम से प्रतिपादित किया है जिनके कुछ परिशिष्ट हम पाठकों एवं विज्ञजनों के अभिप्रायार्थ यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। इस प्रस्तुतीकरण में किसी प्रकार का हमारा आग्रह नहीं है।

इस महत्वपूर्ण सम्पूर्ण कार्य में श्री वीर सेवा मन्दिर का सतत सहयोग एवं मार्गदर्शन हमें प्राप्त होता रहा है। अतः इस संस्था का मैं हृदय से आभारी हूं। साथ ही जैनागम के मूकसेवी एवं सतत शास्त्राभ्यासी श्री पं. पद्मचन्द्र जी शास्त्री के सतत सान्निध्य में समय पाहुड का स्वाध्याय एवं चिन्तन परक हमारा जो उपयोग हुआ है उसके लिए मैं पण्डित सा० का हृदय से कृतज्ञ हूं। इस कार्य में श्री वैद्य पं. राजकुमार जैन आयुर्वेदाचार्य ने हमारे साथ मिलकर स्वाध्याय एवं चिन्तन में सहयोग तथा पाण्डुलिपि तैयार करने आदि में रुचि एवं लगनपूर्वक सहयोग किया, तदर्थ मैं उनका आभारी हूं। समय-समय पर श्री डॉ. सुरेशचन्द्र जैन, डॉ. नन्दलाल जैन ने भी समय एवं सुझाव देकर मुझे सहयोग दिया, तदर्थ उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ।

- रूपचन्द कटारिया

ग्वालियर हाउस

37ए/2, राजपुर रोड

दिल्ली-110054

समय पाहुड

णमो सुयकेवलिणे

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवममलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवली भणिदं॥१॥

अन्वय - *धुवं अमलं अणोवमं गदिं पत्ते सव्व सिद्धे वंदित्तु सुदकेवली भणिदं इणमो समय पाहुडं वोच्छामि।*

अर्थ - मैं ध्रुव, अमल, (द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित), अनुपम (उपमा रहित), गति को प्राप्त सब सिद्धों को वन्दन करके श्रुत केवली द्वारा प्रतिपादित इस समय पाहुड को कहूँगा।

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।
पुग्गल कम्मुवदेसट्ठियं च तं जाण परसमयं॥२॥

अन्वय - *चरित्तदंसणणाणट्ठिदो जीवो तं हि ससमयं जाण पुग्गलकम्मुवदेसट्ठियं च तं परसमयं जाण।*

अर्थ - जीव वास्तव में नियम से चारित्र, दर्शन और ज्ञान में स्थित है उसको समय सहित (स्वसमय) जानो और पुद्‌गल कर्म के उपदेश में स्थित (पुद्‌गल कर्म में तन्मय जीव) को परसमय जानो।

एयत्त णिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणि होदि॥३॥

अन्वय - *एयत्त णिच्छयगदो समओ लोगे सव्वत्थ सुंदरो तेण एयत्ते बंधकहा विसम्बादिणि होदि।*

अर्थ - अकेला निश्चयगत (यथार्थता को प्राप्त) समय लोक में सर्वत्र सुन्दर (अविसंवादी) है। इसलिए एकत्व में बंध को करने वाली कथनी विसंवादिनी होती है।

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स॥४॥

अन्वय - *कामभोगबंधकहा सव्वस्स सुदपरिचिदाणुभूदा। णवरि विहत्तस्स एयत्तस्सुवलंभो सुलभो ण।*

अर्थ - काम-भोग और बंध (कर्म संचय) को करने वाली कथा सर्व जीवों द्वारा सुनी, परिचय में और इन्द्रियों द्वारा अनुभूति में आई है। केवल (पर-समय) विभक्त अकेले समय की उपलब्धि सुलभ नहीं है।

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥५॥

अन्वय - *तं एयत्तविहत्तं अप्पणो सविहवेण दाएह। पमाणं दाएज्ज जदि चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्व।*

अर्थ - मैं उस एकत्व-विभक्त को स्ववैभव से दर्शाता हूँ और प्रमाण देता हूँ। यदि (तू प्रमाण को ग्रहण करने में) चूक जाता है तो तुझे छल (अर्थ-विघात) को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धा णादा जो सो दु सो चेव॥६॥

अन्वय - *जाणगो दु जो भावो सो णवि अप्पमत्तो ण पमतो होदि जो सुद्धा सो चेव णादा एवं भणंति।*

अर्थ - जो ज्ञायक भाव है वह अप्रमत्त भी नहीं है और प्रमत्त भी नहीं है। जो शुद्ध है वही ज्ञाता है–ऐसा (श्रुत केवली) कहते हैं।

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो॥७॥

अन्वय - *णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं ववहारेण उवदिस्सदि सुद्धो जाणगो ण णाणं ण चरित्तं णवि दंसण।*

अर्थ - सम्यग्ज्ञानी के चारित्र, दर्शन और ज्ञान हैं। ऐसा व्यवहार से उपदेश है। शुद्ध ज्ञायक के न अकेला ज्ञान है, न अकेला चारित्र है और अकेला दर्शन भी नहीं है (ज्ञायक दशा अभेद रत्नत्रय रूप है)।

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणमसक्कं॥८॥

अन्वय - *जह अणज्जो अणज्जभासं विणा गाहेदुं दु णवि सक्कं तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेसणं असक्क।*

अर्थ - जिस प्रकार अनार्य पुरुष अनार्य भाषा के बिना (अन्य भाषा में) अर्थ ग्रहण करने में समर्थ नहीं है उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ (आगम) का उपदेश देना अशक्य है।

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तुं केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा॥९॥

अन्वय - *जो हि सुदेण इणं अप्पाणं तु केवलं सुद्धं अहिगच्छदि लोगप्पदीवयरा इसिणो तं सुदकेवलिं भणंति।*

अर्थ - जो श्रुत ज्ञान से इस आत्मा को केवल शुद्ध जानता है लोक को प्रकाशित करने वाले ऋषि उसे श्रुतकेवली कहते हैं।

जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
सुदणाणमाद सव्वं जह्मा सुदकेवली तह्मा॥१०॥

अन्वय - *जो सव्वं सुदणाणं जाणदि तं जिणा सुदकेवलिं आहु। जह्मा सव्वं सुदणाणं आद तम्हा सुदकेवली।*

अर्थ - जो समस्त श्रुतज्ञान को जानता है उसे जिनेन्द्र भगवान श्रुतकेवली कहते हैं। क्योंकि सर्व श्रुतज्ञान आत्मा ही है, इसी कारण वे श्रुतकेवली● हैं।

●**जो हि सुदेण विजाणदि अप्पाणं जाणगं सहावेण।**
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा॥

प्रवचनसार गाथा ३३ ज्ञानाधिकार

णाणह्मि भावणा खलु कादव्वा दंसणे चरित्ते य।
ते पुण तिण्णिवि आदा तह्मा कुण भावणं आदे॥११॥

जो आदाभावणमिणं णिच्चुवजुत्तो मुणी समाचरदि।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावइ अचिरेण कालेण॥१२॥

अन्वय - *खलु णाणह्मि दंसणे चरित्ते य भावणा कादव्वा पुण ते तिण्णि वि आदा तह्मा आदे भावणं कुण।*

णिच्चउवजुत्तो जो मुणी इणं आदाभावणं समाचरदि सो अचिरेण कालेण सव्वदुक्खमोक्खं पावइ।

अर्थ - वस्तुतः ज्ञान, दर्शन और चारित्र में भावना करनी चाहिये और ये तीनों भी आत्मा हैं, इसलिए आत्मा में भावना करो।

इस आत्म-भावना में लगा हुआ जो मुनि नित्य सम्यक् रूप से आचरण करता है वह शीघ्र ही सब दुखों से छुटकारा पाता है।

•ववहारो भूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो॥१३॥

अन्वय - *ववहारो भूदत्थो सुद्धणओ दु भूदत्थो देसिदो भूदत्थं अस्सिदो जीवो खलु सम्मादिट्ठी हवदि।*

अर्थ - व्यवहार भूतार्थ है और शुद्धनय भी भूतार्थ उपदिष्ट है। भूतार्थ के आश्रयभूत जीव नियम से सम्यग्दृष्टि होता है।

••सुद्धो सुद्धादेसो णादव्वो परमभावदरिसिहिं।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे॥१४॥

अन्वय - *परमभावदरिसिहिं सुद्धादेसो सुद्धो णादव्वो जे दु अपरमे भावे ट्ठिदा ववहारदेसिदा।*

अर्थ - परमभावदर्शियों के द्वारा पूर्वापरदोष रहित शुद्ध जानना चाहिए और जो अपरम भाव में स्थित हैं वह व्यवहारोपदिष्ट हैं।

•जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारणिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जई तित्थं अण्णेण उण तच्चं।
जं सुत्तं जिण उत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो।
तं जाणिउण जोइ लहइ सुहं खवइ मलपुंजं॥
••तस्स मुहग्गदवयणं पुव्वापरदोसविरहियं सुद्धं।
आगम इदि परिकहियं तेण दु भणिया हवंति तच्चत्था॥

सुत्त पाहुड गाथा ६

जीवाधिकार

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्ण पावं च।
आसवसंवरणिज्झरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥१५॥

अन्वय - *भूदत्थेण अभिगदा जीवाजीवा य पुण्ण पावं आसवसंवर-णिज्झरबंधो मोक्खो च सम्मत्त।*

अर्थ - भूतार्थ से अभिज्ञात जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष (इनका सम्यक्श्रद्धान) सम्यक्त्व है।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणाहि॥१६॥

अन्वय - *जो अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं अविसेसं असंजुत्तं पस्सदि तं सुद्धणयं वियाणाहि।*

अर्थ - जो नय (ज्ञानांश) आत्मा को अबद्ध (द्रव्यकर्म/भावकर्म-नोकर्म से अबद्ध) स्पृष्ट, अनन्य, नियत (मर्यादित) अविशेष (विशेषता रहित) असंयुक्त (पर से पृथक्) जानता है उसे शुद्ध नय जानो।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१७॥

अन्वय - *जो अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णं अविसेसं पस्सदि अपदेससुत्तमज्झं सव्वं जिण सासणं पस्सदि।*

अर्थ - जो अपने को अबद्ध, अस्पृष्ट, अनन्य (इक्को) अविशेष (विशेषता रहित) का श्रद्धान करता है वह उपदेशित श्रुत में सम्पूर्ण जिन शासन का श्रद्धान करता है।

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणि(णे) चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे॥१८॥

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुणो जाणि तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥१९॥

अन्वय - *मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य आदा मे पच्चक्खाणे संवरे जोगे खु आदा।*

साहुणा णिच्चं दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि ताणि चेव तिण्णिवि पुणो णिच्चयदो अप्पाणं जाणि।

अर्थ - मेरे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, प्रत्याख्यान, संवर और योग में नियम से आत्मा है। अर्थात् ये समस्त आत्मशुद्धयर्थ हैं। अन्य दार्शनिकों की भांति इनमें अन्य ईश्वराधीनता-लक्ष्यीभूतता नहीं है।

साधु के द्वारा नित्य (निरन्तर) ही दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना की जानी चाहिये और उन तीनों को नियम से अपना जानो।

जह णाम कोइ पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्तत्थीओ सुपयत्तेण॥२०॥

एवं हि जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो।
अणुचरिदव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण॥२१॥

(युगलम्)

अन्वय - *जह णाम अत्तत्थीओ कोइ पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि तो (सो) पुणो तं पयत्तेण अणुचरदि एवं हि मोक्खकामेण जीवराया णादव्वो तह य सद्दहेदव्वो पुणो सो चेव दु अणुचरिदव्वो।*

अर्थ - जैसे अर्थ (धन) का इच्छुक कोई भी पुरुष राजा को जानकर श्रद्धान करता है और प्रयत्न पूर्वक उसकी सेवा करता है उसी तरह मोक्ष की इच्छा से जीवराजा को जानना चाहिये और उसी प्रकार श्रद्धान करना चाहिये। फिर अनुसरण करना चाहिये।

कम्मे णोकम्मह्मि य अहमिदि अहं च कम्म णोकम्मं।
जा एसा खलु बुद्धी अप्पडिबुद्धो हवदि तावं॥२२॥

अन्वय - *अहं कम्मे य णो कम्मह्मि य कम्म णोकम्मं च अहं इदि जा एसा बुद्धि खलु तावं अप्पडिबुद्धो हवदि।*

अर्थ - मैं कर्म-नोकर्म में हूँ और कर्म-नोकर्म मैं हूँ-जब तक ऐसी बुद्धि है तब तक यह जीव निश्चय से अप्रतिबुद्ध (बहिरात्मा) है।

जीवे वा अजीवे वा संपडि समयह्मि जत्थ उवजुत्तो।
तत्थेव बंध मोक्खो होदि समासेण णिद्दिट्ठो॥२३॥

अन्वय - *संपडि समयह्मि अजीवे जीवे वा जत्थ उवजुत्तो तत्थेव बंध मोक्खो होदि इदि समासेण णिद्दिट्ठो।*

अर्थ - जिस समय में उपयोग अजीव में या जीव में जहाँ होता है वहाँ पर ही बन्ध व मोक्ष होता है-ऐसा संक्षेप से कहा गया है।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
णिच्छयदो ववहारो पोग्गल कम्माण कत्तारो॥२४॥

अन्वय - *णिच्छयदो आदा जं भावं कुणदि सो तस्स भावस्स कत्ता होदि ववहारो पोग्गल कम्माण कत्तारो।*

अर्थ - निश्चय से आत्मा जिस भाव को करता है वह उस भाव का कर्त्ता होता है और व्यवहार से आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्त्ता है।

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा॥२५॥

आसि मम पुव्वमेदं आह मेउद (अहमेदं चावि) पुव्वकालह्मि।
होहदि पुणोवि मज्झं अहमेदं भासि होस्सामि॥२६॥

एदं तु असंभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढो॥२७॥

(त्रिकलम्)

अन्वय - *अहं एदं अहं एदं अहं एदस्स एदं मम होमि वा सच्चित्ताचित्तमिस्सं अण्णं जं परदव्वं आह पुव्व एदं मम आसि पुव्व कालह्मि उद अहं एदं आसि पुणोवि मज्झ होहदि अहं भासि एदं होस्सामि।*

एदं तु सम्मूढो असंभूदं आदवियप्पं करेदि दु भूदत्थं जाणंतो असंमूढो तं ण करेदि।

अर्थ - मैं यह हूँ, यह मैं हूँ, मैं इसका हूँ, मेरा यह है अथवा सचित्त, अचित्त या मिश्र जो परद्रव्य है यह पहले मेरे थे और मैं भी इनका था और फिर यह मेरा होगा और मैं इनका होऊँगा-इस प्रकार सम्मूढ़ (मिथ्या दृष्टि) आत्मा के असम्भव विकल्पों को करता है। भूतार्थ को जानता हुआ असम्मूढ़ (सम्यग्ज्ञानी) उन (विकल्पों) को नहीं करता है।

अण्णाणमोहिदमदी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं।
बद्धमबद्धं हि तहा जीवे बहुभावसंजुत्तो॥२८॥

अन्वय - *बहुभावसंजुत्तो तहा अण्णाण मोहिदमदी जीवे बद्धं अबद्धं हि पुग्गलं दव्वं इणं मज्झं भणदि।*

अर्थ - अनेक भावों से युक्त तथा अज्ञान से मोहित मति और जीव में बद्ध, अबद्ध पुद्गल द्रव्य को यह मेरा है-ऐसा कहता है।

सव्वण्हु णाणदिट्ठि जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं।
कह सो पुग्गलदव्वी भूदो जं भणसि मज्झमिमं॥२९॥

जदि सो पुग्गलदव्वी भूदो जीवत्तमागदं इदरं।
तो सक्को वोत्तुं जे मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं॥३०॥

अन्वय - *सव्वण्हु णाणदिट्ठि णिच्चं उवओगलक्खणो जीवो सो पुग्गलदव्वी भूदो जं इमं मज्झं कह भणसि।*

जदि सो पुग्गलदव्वी भूदो इदरं जीवत्तं आगदं तो वोत्तुं सक्को जे इणं पुग्गलदव्वं मज्झ॥

अर्थ - परन्तु सर्वज्ञ के ज्ञान में नित्य उपयोग लक्षण वाला जीव है-ऐसा देखा गया है। फिर जो पुद्‌गल द्रव्य रूप है उसको मेरा है ऐसा क्यों (कैसे) कहता है? यदि वह पुद्‌गल द्रव्य भूत जीव से इतर अन्य द्रव्य जीवत्व को प्राप्त हो गया तब यह कह सकते हैं कि यह पुद्‌गल द्रव्य मेरा है।

जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव।
सव्वावि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो॥३१॥

अन्वय - *जदि जीवो सरीरं ण चेव सव्वावि तित्थयरायरिय संथुदी मिच्छा हवदि तेण देहो आदा हवदि।*

अर्थ - यदि जीव शरीर नहीं है तो तीर्थंकर-आचार्य की स्तुति पूर्ण रूप से मिथ्या हो जायेगी। इस कारण आत्मा देह है (यह कथन उचित है)?

ववहार णयो भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को।
ण दु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एकट्ठो॥३२॥

अन्वय - *खलु ववहार णयो भासदि देहो जीवो य इक्को हवदि दु णिच्छयस्स देहो जीवो य कदावि एकट्ठो ण।*

अर्थ - वस्तुतः व्यवहार नय जीव और देह को एक बतलाता है। किन्तु निश्चय नय का जीव और देह कभी भी एकार्थ (एक पदार्थ, द्रव्य) नहीं है अर्थात् अलग अलग है।

इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भगवं॥३३॥

अन्वय - *मुणी जीवादो अण्णं इणं पुग्गलमयं देहं थुणित्तु हु मए केवलि भगवं संथुदो वंदिदो मण्णदि।*

अर्थ - मुनि जीव से अन्य (इतर) इस पुद्गलमय देह की स्तुति करके मेरे द्वारा केवली भगवान की स्तुति, वन्दना हुई-ऐसा मानता है।

तं णिच्छयेण जुझदि ण सरीरगुणा ह होंति केवलिणो।
केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि॥३४॥

अन्वय - *तं णिच्छयेण जुझदि ह सरीरगुणा केवलिणो ण होंति जो केवलिगुणे थुणदि सो तच्चं केवलिं थुणदि।*

अर्थ - जब उस स्तुति को निश्चय से जोड़ते हैं तब शरीर के गुण केवली के नहीं होते हैं। जो (मुनि) केवली के गुणों की स्तुति करता है वह वस्तुत: केवली की स्तुति करता है।

णयरम्मि वण्णिदे जह ण वि रण्णो वण्णणा कदा हवदि।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति॥३५॥

अन्वय - *जह णयरम्मि वण्णिदे कदा रण्णो वण्णणा णवि हवदि देहगुणे थुव्वंते ण केवलि गुणा थुदा होंति।*

अर्थ - जिस प्रकार नगर का वर्णन करने पर राजा का वर्णन कभी भी नहीं होता है। ऐसे ही देह के गुणों की स्तुति करने पर केवली के गुण स्तवन किये गये नहीं होते।

जो इन्दिए जिणित्ता णाणसहावाधिअं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू॥३६॥

अन्वय - *जो इन्दिए जिणित्ता आदं णाणसहावाधिअं मुणदि जे णिच्छिदा साहू ते खलु तं जिदिंदियं भणंति।*

अर्थ - जो इन्द्रियों को जीत कर आत्मा को अधिक ज्ञान स्वभावी मनन करता है निश्चय को प्राप्त साधु उसको वस्तुतः जितेन्द्रिय कहते हैं।

जो मोहं तु जिणित्ता णाण सहावाधियं मुणदि आदं।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया वेंति॥३७॥

अन्वय - *जो तु मोहं जिणित्ता आदं णाण सहावाधियं मुणदि परमट्ठवियाणया तं जिदमोहं साहूं वेंति।*

अर्थ - जो मोह को जीत कर आत्मा को ज्ञान स्वाभावाधिक मनन करता है उस साधु को आगम के ज्ञाता जितमोह साधु कहते हैं।

जिदमोहस्स दु जइया खीणो मोहो हविज्ज साहुस्स।
तइया हु खीणमोहो भण्णदि सो णिच्छयविदूहिं॥३८॥

अन्वय - *जइया दु जिदमोहस्स साहूस्स मोहो खीणो हविज्ज तइया हु णिच्छयविदूहिं खीण मोहो भण्णदि।*

अर्थ - जब जितमोह साधु का मोह क्षीण हो जाता है तब वस्तुतः उसे निश्चय के ज्ञाता द्वारा क्षीणमोह कहा जाता है।

सव्वे भावा जह्मा पच्चक्खादि परेत्ति णादूण।
तह्मा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं॥३९॥

अन्वय - *जह्मा परे सव्वे भावा णादूण पच्चक्खादि इति तह्मा णाणं णियमा पच्चक्खाणं मुणेदव्व।*

अर्थ - जिस कारण से ज्ञान समस्त पर भावों को जानकर उनका प्रत्याख्यान करता (छोड़ता) है उस कारण से उस ज्ञान को नियम से प्रत्याख्यान जानना चाहिये।

जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणं ति जाणिदुं मुवदे।
तह सव्वे परभावे णादूण विमुंचदे णाणी॥४०॥

अन्वय - *जह णाम कोवि पुरिसो इणं परदव्वं जाणिदुं मुवदे तह णाणी सव्वे परभावे णादूण विमुंचदे।*

अर्थ - जैसे कोई पुरुष यह पर द्रव्य है (स्वद्रव्य नहीं है) यह जानकर उसको त्यागता है। वैसे ही सम्यग्ज्ञानी समस्त परभावों को जानकर (उन्हें) त्यागता है।

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया वेंति॥४१॥

अन्वय - *मम कोवि मोहो णत्थि अहं इक्को उवओग एव बुज्झदि समयस्य वियाणया तं मोह णिम्ममत्तं वेंति।*

अर्थ - कोई भी मोह मेरा नहीं है। मैं अकेला उपयोग ही हूँ-ऐसा जिसे बोध हो गया है आगम के जानने वाले उसको मोह से निर्ममत्व कहते हैं।

णत्थि मम धम्म आदी बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया वेंति॥४२॥

अन्वय - *धम्म आदी मम णत्थि अहं इक्को उवओग एव बुज्झदि समयस्स वियाणया धम्मणिम्ममतं वेंति।*

अर्थ - धर्म आदि (धर्म-अधर्म-आकाश-काल द्रव्य) मेरे नहीं हैं, मैं अकेला उपयोग ही हूँ-ऐसा जिसे बोध हो गया है आगम के ज्ञाता उसे धर्म आदि से निर्ममत्व कहते हैं।

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तंपि ॥४३॥

अन्वय - *खलु अहं इक्को सुद्धो दंसणणाणमइओ सदा अरुवी अण्णं परमाणुमित्तंपि किंचिवि मज्झ ण अत्थि।*

अर्थ - वस्तुतः मैं अकेला शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी सदा अरूपी हूँ। अन्य परमाणु मात्र कुछ भी मेरा नहीं है।

एवं राय दोसा कोदा माण माया लोह कम्मणो।
कम्ममण वचि काय अब्दुवसाण विसोहि बुद्धि दयासि ॥४४॥

एवं राय दोसा कोदा माण माया लोह कम्म णोकम्म।
मण वचि काय अब्दुवसाण विसोहि बुद्धि उदयासि ॥४५॥

इति पढ़मो जीवाधिकारो समत्तो

●●

अजीवाधिकार

अप्पाणमयाणंता मूढा दु परप्पवादिणो केई।
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परूविंति॥४६॥

अवरे अज्झवसाणे सु तिव्व मंदाणुभावगं जीवं।
मण्णंति तहा अवरे णो कम्मं चावि जीवोत्ति॥४७॥

कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुभागमिच्छंति।
तिव्वत्तणमन्दत्तण गुणेहिं जो सो हवदि जीवो॥४८॥

जीवो कम्मं उभयं दोण्णिवि खलु केइ जीवमिच्छंति।
अवरे संजोगेण दु कम्माणं जीवमिच्छंति॥४९॥

एव विहा बहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा।
ते ण दु परमट्ठ वादी णिच्छयवादीहिं णिदि्दट्ठा॥५०॥

अन्वय - *अप्पाणं.अयाणंता केई परप्पवादिणो तहा मूढा दु अज्झवसाणं कम्मं च जीवं परुविंति।*

तहा अवरे अज्झवसाणे सु तिव्व मन्दाणुभावगं जीवं मण्णंति तहा च अवरे णो कम्मं अवि जीवोत्ति।

अवरे कम्मस्सुदयं कम्माणुभागं जीवं इच्छन्ति जो तिव्वत्तण मन्दत्तण गुणेहिं सो जीवो हवदि।

केइ जीवो उभयं कम्मं दोण्णवि खलु जीवमिच्छन्ति
अवरे दु संजोगेण कम्माणं जीवं इच्छन्ति।

एवविहा दुम्मेहा परमप्पाणं बहुविहा वदंति ते ण दु णिच्छय
वादीहिं परमट्ठवादी णिद्दिट्ठा।

अर्थ - आत्मा को विपरीत जानने वाले कितने ही अन्य आत्मवादी तथा मोही, अध्यवसान और कर्म को जीव प्ररूपित करते हैं और अन्य कोई अध्यवसानों में तीव्र-मन्द-अणु भाग करने वाले को जीव मानते हैं तथा अन्य कोई नोकर्म (शरीर) को जीव इस प्रकार मानते हैं और कोई दूसरे कर्म के उदय को जीव कहते हैं और कोई तीव्र मन्द गुण से कर्मानुभाग जीव होता है-ऐसा कहते हैं। कोई जीव और उभय कर्म (द्रव्यकर्म-भावकर्म) दोनों को भी जीव मानते हैं और कोई कर्मों के संयोग से जीव को मानते हैं।

इस प्रकार अनेक प्रकार से दुर्बुद्धि वाले आत्मा को अन्य अन्य तरह से कहते हैं। इससे निश्चयवादियों द्वारा वे परमार्थवादी नहीं कहे गये हैं।

एदे सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा।
केवलिजिणेहिं भणिया किह ते जीवोत्ति वुच्चंति ॥५१ ॥

अन्वय - *एदे सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणाम-णिप्पण्णा केवलिजिणेहिं भणिया ते कह जीवोत्ति वुच्चंति।*

अर्थ - ये समस्त भाव पुद्गल द्रव्य के परिणमन (अष्ट कर्म) से निष्पन्न हैं-ऐसा केवली भगवान के द्वारा कहा गया है फिर वे उसे जीव किस प्रकार (कैसे) कहते हैं?

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वं पुग्गलमयं जिणा विंति।
जस्स फलं तं वुच्चदि दुक्खं ति विपच्चमाणस्स ॥५२ ॥

अन्वय - *अट्ठविहं सव्वं पि कम्मं पुग्गलमयं जिणा विंति जस्स विपच्चमाणस्स फलं तं दुक्खं ति वुच्चदि।*

अर्थ - आंठ प्रकार के समस्त कर्म पुद्गलमयी हैं-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं। जिसके विपच्च्यमान (विपाक दशा को प्राप्त) फल को दु:ख कहते हैं।

ववहारस्स दरीसणमुवदेसो वण्णिदो जिणवरेहिं।
एदे जीवा सव्वे अज्झवसाणादओ भावा॥५३॥

अन्वय - *अज्झवसाणादओ एदे सव्वे भावा जीवा जिणवरेहिं उवदेसो ववहारस्स दरीसणं वण्णिदो।*

अर्थ - अध्यवसानादि ये समस्त भाव जीव के हैं-यह उपदेश जिनेन्द्रों के द्वारा व्यवहार के दिखाने को किया गया है।

राया खु णिग्गदो त्तिय ऐसो बलसमुदयस्स आदेसो।
ववहारेण दु उच्चदि तत्थेको णिग्गदो राया॥५४॥

एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाणं।
जीवो त्ति कदो सुत्ते तत्थेको णिच्छदो जीवो॥५५॥

अन्वय - *बल समुदयस्स राया दु णिग्गदो ऐसो आदेसो त्तिय ववहारेण दु उच्चदि खु तत्थेको राया णिग्गदो।*

एमेव सुत्ते अज्झवसाणादि अण्णभावाणं जीवो कदो इति तत्थे को णिच्छदो जीवो।

अर्थ - बल समुदाय का राजा निकला है-ऐसा कथन व्यवहार से किया जाता है। वस्तुतः वहां एक राजा निकला।

इसी प्रकार सूत्र में अध्यवसानादि अन्य भाव जीव के द्वारा किए गए। वहां निश्चित एक जीव है।

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठ संठाणं॥५६॥

अन्वय - *जीवं अरसं अरूवं अगंधं अव्वत्तं असद्दं अलिंगग्गहणं अणिद्दिट्ठसंठाणं चेदणागुणं जाण।*

अर्थ - जीव को अरस (रस रहित), अरूप (रूप रहित), अगंध (गंध रहित), अव्यक्त (अप्रकट-इन्द्रिय अगोचर), अशब्द (शब्द रहित), लिंग बिना ग्राह्य अनिर्दिष्ट संस्थान (जिसका आकार नहीं कहा गया), और चेतना गुण वाला है-ऐसा जानो।

जीवस्स णत्थि वण्णो णवि गंधो णवि रसो णवि य फासो।
णवि रूवं ण सरीरं ण वि संट्ठाणं ण संहडणं॥५७॥

जीवस्स णत्थि रागो णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि॥५८॥

जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्डया केई।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभायठाणा वा॥५९॥

जीवस्स णत्थि केई जोगट्ठाणा ण बंधठाणा वा।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई॥६०॥

णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा॥६१॥

णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा व अत्थि जीवस्स।
जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा॥६२॥

(षट्कम्)

अन्वय - *जीवस्स वण्णो णत्थि णवि गंधो णवि रसो णवि य फासो णवि रूवं ण सरीरं णवि संट्ठाणं ण संहडण॥*

जीवस्स रागो णत्थि णवि दोसो णेव मोहो विज्जदे णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि।

जीवस्स वग्गो णत्थि ण वग्गणा णेव केई फड्डया णो अज्झप्पट्ठाणा अणुभायठाणा वा य णेव।

जीवस्स केई जोगट्ठाणा णत्थि ण बंधट्ठाणा वा णेव उदयट्ठाणा केई य मग्गणट्ठाणया ण।

जीवस्स ठिदिबंधट्ठाणा णो संकिलेसट्ठाणा वा ण णेव विसोहिट्ठाणा संजमलद्धिठाणां वा णो।

जीवस्स जीवट्ठाणा णेव गुणट्ठाणा य ण अत्थि जेण एदे सव्वे दु पुग्गलदव्वस्स परिणामा।

अर्थ - जीव के वर्ण नहीं है, गंध भी नहीं है, रस भी नहीं है, स्पर्श भी नहीं है, रूप भी नहीं है, शरीर भी नहीं है, संस्थान भी नहीं है, संहनन भी नहीं है।

जीव के राग नहीं है, दोष नहीं है, मोह नहीं है, प्रत्यय नहीं है, कर्म नहीं है और नोकर्म भी नहीं है।

जीव के न कोई वर्ग है, न वर्गणा है, न स्पर्धक है, न अध्यवसान है और न ही अणुभाग स्थान है।

जीव के कोई योगस्थान नहीं है और न बंधस्थान है, न ही उदयस्थान है और कोई मार्गणा स्थान भी नहीं है।

जीव के स्थितिबंध स्थान नहीं है और न संक्लेश स्थान है, न विशुद्धिस्थान है और न संयमलब्धि स्थान है।

जीव के जीवस्थान (जीव समास) नहीं है और जीव के गुणस्थान नहीं है। अतः ये सब तो पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं (जीव के परिणाम नहीं हैं)

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स॥६३॥

अन्वय - *वण्णमादीया गुणठाणंता एदे भावा ववहारेण जीवस्स हवंति णिच्छयणयस्स केई णदु (हवंति)।*

अर्थ - उपर्युक्त वर्ण आदि से लेकर गुणस्थान पर्यन्त ये भाव व्यवहार नय से जीव के होते हैं। निश्चय नय से ये कोई जीव के नहीं हैं।

एदेहि य संबंधो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो।
णय हुंति तस्स ताणि दु उवओग गुणाधिगो जम्हा॥६४॥

अन्वय - *एदेहिं य (जीवस्स) संबंधो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो (जीवो) उवओग गुणाधिगो जह्मा ताणि दु तस्स ण य हुंति।*

अर्थ - इन (वर्ण आदि) से जीव का सम्बन्ध क्षीर और उदक के समान जानना चाहिये और जीव में उपयोग गुण विशेष होने से ये सब उसके नहीं हैं।

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई॥६५॥

तह जीवे कम्माणं नोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो॥६६॥

गंध फास रूवा संठाणादी समुद्दिट्ठा जे य।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हु ववदिसंति॥६७॥

अन्वय - *पंथे मुस्संतं पस्सिदूण एसो पंथो मुस्सदि ववहारी लोगा भणंति ण य कोई पंथो मुस्सदे तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च वण्णं पस्सिदुं जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो (एवं जीवस्स) जे गंध फास रूवा संठाणादीया समुदिट्ठा सव्वे णिच्छयदण्हु ववहारस्स ववदिसन्ति।*

अर्थ - मार्ग में लुटते हुए व्यक्ति को देखकर व्यवहारी जन यह मार्ग लुटता है-ऐसा कहते हैं। (यद्यपि) कोई मार्ग (आकाश प्रदेश रूप होने से) लुटता नहीं है।

उसी प्रकार जीव में कर्म और नोकर्म के वर्ण को देखकर यह वर्ण जीव का है यह जिनेन्द्र भगवान ने व्यवहार से कहा है।

इस प्रकार जीव के जो गन्ध, स्पर्श, रूप, संस्थानादिक कहे गये हैं वे सब निश्चयदर्शियों के द्वारा व्यवहार से कहे गये हैं।

तत्थभवे जीवाणं संसारत्थाणं होंति वण्णादी।
संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णादओ केई॥६८॥

अन्वय - *संसारत्थाणं जीवाणं तत्थमेव वण्णादि होंति हु संसारपमुक्काणं केई वण्णादओ णत्थि।*

अर्थ - संसार में स्थित (संसारी) जीवों के उस भव में (भवानुसार) वर्णादिक होते हैं। निश्चय से संसार से प्रमुक्त (निर्वाण को प्राप्त) के कोई वर्णादिक नहीं है।

जीवो चेव हि एदे सव्वे भावहि मण्णसे जदि हि।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई॥६९॥

अन्वय - *जदि हि एदे सव्वे भावहि चेव जीवोत्ति मण्णसे दु दे जीवस्स अजीवस्स य कोई विसेसो णत्थि।*

अर्थ - यदि निश्चय से उपर्युक्त समस्त भाव ही जीव हैं-ऐसा मानते हो तो तुम्हारे मत में जीव और अजीव में कोई विशेषता (अन्तर) नहीं है।

यदि संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादि।
तम्हा संसारत्था जीवा रूवत्तमावण्णा ॥७० ॥

एवं पुग्गलदव्वं जीवो तवलक्खणेण मूढ़मदी।
णिव्वाणमुवगदो वि य जीवत्तं पुग्गलो पत्तो ॥७१ ॥

(युगलं)

अन्वय - *यदि तुज्झ संसारत्थाणं जीवाणं वण्णादि होंति तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तं आवण्णा।*

मूढमदी एवं तवलक्खणेण पोग्गलदव्वं जीवत्तं पत्तो पुग्गलो जीवो वि य णिव्वाणमुवगदो।

अर्थ - यदि तेरे मत में संसार स्थित जीवों के वर्णादिक होते हैं तो संसारी जीव रूपित्व को प्राप्त हो जायेंगे। इस प्रकार हे मूढ़मति! (मोहित बुद्धि वाले जीव) उस रूपित्व लक्षण से पुद्गल द्रव्य जीव माना जायेगा और जीवत्व को प्राप्त पुद्गल भी निर्वाण को प्राप्त हो जायेगा।

एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इंदिया जीवा।
वादर पज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स ॥७२॥

एदाहि य णियता जीवट्ठाणा दु करणभूदाहिं।
पयडीहिं पुग्गलमईहिं ताहिं कह भण्णदि जीवो ॥७३॥

अन्वय - *एक्कं च दोण्णि य तिण्णि य चतारि य पंच इंदिया जीवा वादर पज्जत इदरा णाण कम्मस्स पयडीओ।*

य एदाहि पुग्गलमईहिं करणभूदाहिं पयडीहिं जीवट्ठाणा दु णियत्ता ताहिं जीवो कह भण्णदि?

अर्थ - एक, दो, तीन, चार और पांच इन्द्रियों तथा बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त ये जीव की नामकर्म की प्रकृतियाँ हैं।

उपर्युक्त पुद्‌गलमयी इन्द्रियभूत प्रकृतियों से जीवस्थान की निवृत्ति (रचना) हुई है उसे तू जीव कैसे कहता है?

पज्जतापज्जता जे सुहुमा बादरा य जे चेव।
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता॥७४॥

अन्वय - *जे चेव पज्जता अपज्जता सुहमा बादरा य सुत्ते देहस्स जीवसण्णा ववहारदो उत्तो।*

अर्थ - यह पर्याप्त है, अपर्याप्त है, सूक्ष्म है, बादर है-यह सूत्र में देह की जीवसंज्ञा व्यवहार से कही गई है।

मोहणकम्मस्सुदया दु वण्णिदा जे इमे गुणट्ठाणा।
ते किह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता॥७५॥

अन्वय - *मोहणकम्मस्सुदया जे इमे गुणट्ठाणा वण्णिदा दु ते णिच्चमचेदणा उत्ता ते जीवा किह हवंति?*

अर्थ - मोहनीय कर्म के उदय जन्य ये गुणस्थान कहे गये हैं। जो नित्य अचेतन कहे गये हैं वे जीव कैसे हो सकते हैं?

●●

कर्त्तृ कर्माधिकार

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोह्णं पि।
अण्णाणि ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो॥७६॥

कोधादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संभवो होदि।
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरसीहिं॥७७॥

अन्वय - *जीवो जाव आदासवाण दोण्हंपि तु विसेसंतरं ण वेदि ताव सो अण्णाणी कोधादिसु वट्टदे। कोधादिसु बट्टंतस्स बन्धो तस्स जीवस्स कम्मस्स संभओ होदि एवं खलु सव्वदरसीहिं बंधो भणिदो।*

अर्थ - जीव जब तक आत्मा और आश्रव इन दोनों के विशेष भेद को नहीं जानता है तब तक वह अज्ञानी है और क्रोधादि में वर्तन करता है। क्रोधादि में वर्तन करने वाले उस जीव के कर्म का संभव होता है। इस प्रकार सर्वज्ञ देव ने नियम से बंध कहा है।

जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण बंधो से॥७८॥

अन्वय - *जइया इमेण जीवेण अप्पणो य तहेव आसवाण विसेसंतरं णादं होदि तइया तु से बंधो ण।*

अर्थ - जब इस जीव के द्वारा आत्मा का और उसी प्रकार आश्रवों के विशेष अन्तर ज्ञात हो जाते हैं तब उसके बंध नहीं है।

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीय भावं च।
दुक्खस्स कारणं त्ति य तदो णियतिं कुणदि जीवो॥७९॥

अन्वय - *जीवो आसवाणं असुचित्तं च विवरीयं भावं च दुक्खस्स कारणं णादूण तदो णियतिं कुणदिति।*

अर्थ - जीव आस्रवों की अशुचिता और विपरीत भाव और दुख का कारण जानकर उनसे निवृत्ति को करता है।

अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्मओ णाणदंसणसमग्गो।
तह्मि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि॥८०॥

अन्वय - *खलु अहं इक्को शुद्धो णिम्मओ णाण दसंण समग्गो तच्चित्तो तह्मि ठिदो एदे सव्वे खयं णेमि।*

अर्थ - निश्चय से मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, निर्मम हूँ, ज्ञान-दर्शन से समग्र (पूर्ण) हूँ, तन्निमग्न हूँ, उसी में अवस्थित तद्रूप हूँ। अतः इन सब को क्षय करता हूँ।

जीवणिबद्धा एदे अधुवाणिच्चा तहा असरणा य।
दुक्खा दुक्खफलत्ति य णादूण णिवत्तदे तेसु॥८१॥

अन्वय - *जीव णिबद्धा एदे अधुव अणिच्चा तहा असरणा दुक्खा दुखफलत्ति य णादूण तेसु णिवत्तए।*

अर्थ - जीव से बंधे हुए ये (कर्म) अध्रुव (अस्थिर), अनित्य (नाशवान्) तथा असरण और वर्तमान में दु:खरूप तथा भविष्य में दु:खरूप फल को देने वाले हैं-ऐसा जानकर उनसे निवृत्त होता है।

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं।
ण करेदि एवमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी॥८२॥

अन्वय - *कम्मस्स परिणामं तहेव णोकम्मस्स य परिणामं एवमादा ण करेदि जो जाणदि सो णाणी हवदि।*

अर्थ - कर्म के परिणाम और उसी प्रकार नोकर्म के परिणाम को आत्मा नहीं करता है-ऐसा जो जानता है वह ज्ञानी होता है।

कत्ता आदा भणिदो ण य कत्ता केण सो उवाएण।
धम्मादी परिणामे जो जाणदि सो हवदि णाणी॥८३॥

अन्वय - *आदा कत्ता भणिदो धम्मादी परिणामे य सो केण उवाएण कत्ता ण जो जाणदि सो णाणी हवदि।*

अर्थ - (आगम में) आत्मा को कर्त्ता कहा गया है, परन्तु वह धर्म्मादि द्रव्यों (धर्म-अधर्म-आकाश-काल अरूपी द्रव्य) के परिणमन में किसी उपाय से कर्त्ता नहीं है-ऐसा जो जानता है वह ज्ञानी है।

णवि परिणमदि ण गेह्लदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मं अणेयविहं॥८४॥

अन्वय - *हु णाणी अणेयविहं पुग्गल कम्मं जाणंतो वि परदव्वपज्जाये णवि परिणमइ ण गेह्लदि ण वि उप्पज्जदि।*

अर्थ - वस्तुतः ज्ञानी जीव अनेक प्रकार के पुद्‌गल कर्म को जानता हुआ परद्रव्य और उनकी पर्याय रूप में न परिणमन करता है, न ग्रहण करता है और उत्पन्न भी नहीं होता है।

णवि परिणमदि ण गेह्लदि ण उप्पज्जदि परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं॥८५॥

अन्वय - *णाणी अणेयविहं सगपरिणामं जाणंतो परदव्वपज्जाये हु णवि परिणमदि ण गेह्लदि ण वि उप्पज्जदि।*

अर्थ - ज्ञानी जीव वस्तुतः अनेक विध अपने परिणामों को जानता हुआ परद्रव्य पर्यायों में परिणमन नहीं करता, उन्हें ग्रहण नहीं करता और उत्पन्न भी नहीं होता।

णवि परिणमदि ण गेह्लदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मफलं अणंतं॥८६॥

अन्वय - *णाणी अणंतं पुग्गलकम्मफलं जाणंतो वि हु परदव्वपज्जाये णवि परिणमदि ण गेह्लदि ण उप्पज्जदि।*

अर्थ - ज्ञानी जीव वस्तुतः अनन्त पुद्गल कर्म के फल को जानता हुआ भी परद्रव्य पर्याय में परिणमन नहीं करता है, उन्हें ग्रहण नहीं करता है और उनमें उत्पन्न भी नहीं होता है।

णवि परिणमदि ण गेह्लदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाये।
पुग्गलदव्वं पि तहा परिणमदि सएहिं भावेहिं॥८७॥

अन्वय - *तहा पुग्गलदव्वं पि परदव्वपज्जाये ण वि परिणमदि ण गेह्लदि ण उप्पज्जदि सगेहिं भावेहिं परिणमदि।*

अर्थ - उसी प्रकार पुद्गल द्रव्य भी परद्रव्य पर्याय रूप में न तो परिणमन करता है-न (परद्रव्य को) ग्रहण करता है और न उत्पन्न होता है तथा वह भी स्वकीय भावों से परिणमन करता है।

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि॥८८॥

णवि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोह्णं पि॥८९॥

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सगेण भावेण।
पुग्गलकम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं॥९०॥

अन्वय - *पुग्गला जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं परिणमन्ति तहेव जीवो वि पुग्गलकम्मणिमित्तं परिणमदि। जीवो कम्मगुणे णवि कुव्वदि तहेव कम्मं जीवगुणे णवि कुव्वइ। दोह्णंपि परिणामं अण्णोण्णणिमित्तेण जाण। एदेण कारणेण आदा सगेण भावेण कत्ता पुग्गलकम्मकयाणं सव्वभावाणं कत्ता हु ण।*

अर्थ - जीव के परिणाम के हेतुभूत होने पर पुद्गल (कार्माण वर्गणाएं) कर्मरूप परिणमित होती हैं। उसी प्रकार पुद्गल कर्म के निमित्तभूत होने पर जीव भी परिणमन करता है।

जीव कर्म के गुण मे परिणमन नहीं करता है, उसी प्रकार कर्म भी जीव के गुण में परिणमन नहीं करता है। दोनों का परिणमन तो अन्योन्य निमित्त से जानो।

इसी कारण से जीव (आत्मा) स्वकीय भाव का कर्त्ता है परन्तु पुद्गल कर्म के द्वारा किए गए समस्त भावों का कर्त्ता नहीं है। (पडपडिहारसिमज्ज हडचित्तकुलाल भण्डगारिणां जह एएसि भावा कम्माणंपि जाणत्तह भावा-ज्ञानावरणादि कर्म की शक्तियों का कर्त्ता नहीं है)।

णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता दु अत्ताणं॥९१॥

अन्वय - *एवं हि णिच्छयणयस्स आदा अप्पाणं एव करेदि। पुणो अत्ता दु तं अत्ताणं चेव वेदयदि जाण।*

अर्थ - इस प्रकार निश्चय नय का आत्मा वस्तुत: अपने को ही करता है और आत्मा तो उस आत्मा को ही वेदन करता है- ऐसा जानो।

ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेदि णेयविहं।
तं चेव य वेदयदे पुग्गलकम्मं अणेयविहं॥१२॥

अन्वय - *ववहारस्स आदा दु णेयविहं पुग्गलकम्मं करेदि। तं चेव अणेयविहं पुग्गलकम्मं वेदयदे।*

अर्थ - लोक व्यवहार का आत्मा तो अनेक प्रकार के पुद्गल कर्म को करता है और उस अनेक प्रकार के पुद्गल कर्म को भोगता है।

जदि पुग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा।
दो किरिया वादित्तं पसज्जदि सम्मं जिणावमदं॥१३॥

अन्वय - *जदि आदा इणं पुग्गलकम्मं कुव्वदि तं चेव वेदयदि सम्मं जिणावमदं दो किरियावादित्तं पसज्जदि।*

अर्थ - यदि आत्मा इस पुद्गल कर्म को करता है और उसको ही भोगता है तो जिनेन्द्र देव का सम्यक् मत दो किरियावादित्व का प्रसव करता है। (ऐसा प्रसंग आयेगा)

जम्हा दु अत्तभावं पुग्गलभावं च दोवि कुव्वंति।
तेण दु मिच्छादिट्ठी दो किरियावादिणो हौंति॥९४॥

अन्वय - *जम्हा दो किरियावादिणो दु अत्तभावं पुग्गलभावं च दोवि कुव्वंति तेण मिच्छादिट्ठी हौंति।*

अर्थ - जिस कारण से दो क्रिया को स्वीकार करने वाला आत्मभाव और पुद्गल भाव दोनों को भी करता है उससे वह मिथ्यादृष्टि होता है।

पुग्गलकम्मणिमित्तं जह आदा कुणदि अप्पणो भावं।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तह वेददि अप्पणो भावं॥९५॥

अन्वय - *जह आदा अप्पणो भावं पुग्गलकम्मनिमित्तं कुणदि तह अप्पणो भावं पुग्गल कम्मणिमित्तं वेददि।*

अर्थ - जैसे आत्मा अपने भाव को पुद्गल कर्म के निमित्त से करता है वैसे ही आत्मा अपने भाव को पुद्गल कर्म के निमित्त से अनुभव करता है।

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं।
अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा॥१६॥

अन्वय - *पुण मिच्छत्तं दुविहं जीवं अजीवं तहेव अण्णाणं अविरदि जोगो मोहो कोहादीया इमे भावा।*

अर्थ - और मिथ्यात्व जीव तथा अजीव भेद से दो प्रकार का है। उसी प्रकार अज्ञान, अविरति, योग, मोह, क्रोधादि ये भाव भी दो प्रकार के हैं।

पुग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अण्णाणमज्जीवं।
उवओगे अण्णाणं अविरदि मिच्छं जीवो दु॥१७॥

अन्वय - *मिच्छं जोगो अविरदि अण्णाणं पुग्गलकम्मं अजीवं उवओगे अण्णाणं अविरदि मिच्छं दु जीवो।*

अर्थ - मिथ्यात्व, योग, अविरति, अज्ञान पुद्गल कर्म हैं वे अजीव हैं। उपयोग में अज्ञान, अविरति और मिथ्यात्व जीव हैं।

उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदि भावो य णादव्वो॥१८॥

अन्वय - *मोहजुत्तस्य उवओगस्स तिण्णि अणाई परिणामा मिच्छत्तं अण्णाणं य अविरदि भावो णादव्वो।*

अर्थ - मोहयुक्त उपयोग के अनादि परिणाम तीन हैं। उन्हें मिथ्यात्व, अज्ञान और अविरति भाव जानना चाहिये।

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता॥१९॥

अन्वय - *एदेसु सुद्धो य निरंजणो भावो तिविहो उवओगो सो उवओगो जं भावं करेदि सो तस्स कत्ता।*

अर्थ - इसमें शुद्ध और निरंजन भाव है वह तीन प्रकार का उपयोग है। वह उपयोग जिस भाव को करता है वह उसका कर्त्ता होता है।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पुग्गलं दव्वं॥१००॥

अन्वय - *आदा जं भावं कुणदि सो तस्स भावस्स कत्ता होदि। तम्हि पुग्गलं दव्वं सयं कम्मत्तं परिणमदे।*

अर्थ - आत्मा जिस भाव को करता है वह उस भाव का कर्त्ता होता है। इस कारण से पुद्गल द्रव्य (कार्माण वर्गणाएं) स्वयं कर्मत्व रूप में रूपान्तरित होती हैं।

परमप्पाणं कुव्वदि अप्पाणं पि य परं करंतो सो।
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि॥१०१॥

अन्वय - *अण्णाणमओ जीवो परं अप्पाणं कुव्वदि अप्पाणं पि य परं करंतो सो कम्माणं कारगो होदि।*

अर्थ - अज्ञानमय जीव पर को अपना और अपने को भी पर का करता हुआ कर्मों का कर्त्ता होता है।

परमप्पाणमकुव्वि अप्पाणं पि य परं णकुव्वंतो।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारगो होदि॥१०२॥

अन्वय - *णाणमओ सो जीवो परं अप्पाणं अकुव्वि अप्पाणं य पि परं णकुव्वंतो कम्माणं अकारगो होदि।*

अर्थ - (ज्ञानयुक्त) वह ज्ञानी जीव पर को अपना न करता हुआ और अपने को भी पर का न करता हुआ कर्मों का अकर्त्ता होता है।

तिविहो एसुवओगो अस्सवियप्पं करेदि कोदोहं।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स॥१०३॥

अन्वय - *अस्स तिविहो उवओगो कोधोहं एसवियप्पं करेदि। सो तस्सुवओगस्स अत्त भावस्स कत्ता होदि।*

अर्थ - उसका तीन प्रकार का उपयोग मैं क्रोधरूप हूँ-ऐसा विकल्प करता है। वह उस उपयोग के आत्मभावों का कर्त्ता होता है।

तिविहो एसुवओगो अस्सवियप्पं करेदि धम्मादी।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स॥१०४॥

अन्वय - *अस्स तिविहो उवओगो धम्मादी एसवियप्पं करेदि। सो तस्सुवओगस्स अत्तभावस्स कत्ता होदि।*

अर्थ - उसका तीन प्रकार का उपयोग धर्मादि (धर्म-अधर्म-आकाश-काल) का विकल्प करता है तब वह उस उपयोग के आत्मभाव का कर्त्ता होता है।

एवं पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धिओ।
अप्पाणं पि य अण्णं करेदि अण्णाणभावेण॥१०५॥

अन्वय - *एवं मंदबुद्धीओ अण्णाणभावेण पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि। अप्पाणं पि य अण्णं करेदि।*

अर्थ - इस प्रकार मन्दबुद्धि वाला जीव अज्ञान भाव से पर द्रव्यों को अपनत्व करता है और अपने को भी अन्य करता है।

एदेण दु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहि परिकहिदो।
एवं खलु जो जाणदि सो मुंचदि सव्वकत्तित्तं॥१०६॥

अन्वय - *एदेण दु णिच्छयविदूहि सो आदा कत्ता परिकहिदो। एवं खलु जो जाणदि सो सव्वकत्तित्तं मुंचदि।*

अर्थ - इससे निश्चय के ज्ञाताओं के द्वारा वह आत्मा कर्त्ता कहा गया है और वस्तुत: जो जानता है वह सब प्रकार के पर के कर्तृत्व को छोड़ देता है।

ववहारेण दु आदा करेदि घटपटरथादि दव्वाणि।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि॥१०७॥

अन्वय - *ववहारेण दु आदा घटपटरथादि विविहाणि दव्वाणि करणाणि य कम्माणि य णो कम्माणीह करेदि।*

अर्थ - व्यवहार से तो आत्मा घट, पट, रथ आदि अनेक द्रव्यों, इन्द्रियों और कर्मों और नोकर्मों (शरीर) को करता है।

जदि सो परदव्वाणि य करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज।
जम्हा ण तम्मओ तेण सो ण तेसिं हवदि कत्ता॥१०८॥

अन्वय - *जदि सो परदव्वाणि य करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज जह्मा ण तम्मओ तेण सो तेसिं कत्ता ण हवदि।*

अर्थ - यदि वह परद्रव्यों को करे तो नियम से वह उस द्रव्यमय हो जावे। जिस कारण से वह आत्मा तन्मय नहीं है उस कारण से वह आत्मा उनका कर्त्ता नहीं होता है।

जीवो ण करेदि घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे।
जोगुवओगा उप्पादगा य सो तेसिं हवदि कत्ता॥१०९॥

अन्वय - *जीवो घडं णेव पडं णेव सेसगे दव्वे करेदि जोगुवओगा उप्पादगा सो तेसिं कत्ता हवदि।*

अर्थ - जीव न घट को करता है, न ही पट को करता है और न ही शेष (बचे हुए अन्य) द्रव्यों को करता है। योग और उपयोग का उत्पादक वह उनका कर्त्ता होता है।

जे पुग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाण आवरणा।
ण करेदि ते दु आदा जो जाणई सो हवदि णाणी॥११०॥

अन्वय - *पुग्गलदव्वाणं णाण आवरणा जे परिणामा होंति ते दु आदा ण करेदि जो जाणदि सो णाणी हवदि।*

अर्थ - पुद्‌गल द्रव्यों के ज्ञानावरणादि जो परिणाम होते हैं उनको आत्मा नहीं करता है। जो जानता है वह ज्ञानी होता है।

जं भावं सुहमसुहं करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स दु वेदगो अप्पा॥१११॥

अन्वय - *आदा जं सुहमसुहं भावं करेदि खलु स तस्य कत्ता। तं तस्स कम्मं होदि सो अप्पा तस्स दु वेदगो।*

अर्थ - आत्मा जिस शुभ-अशुभ भाव को करता है वस्तुतः वह उसका कर्त्ता होता है। वह भाव उसका कर्म (कार्य) है और वह आत्मा उस (शुभाशुभ कर्म) का वेदक (भोक्ता) होता है।

जो जह्मि गुणो दव्वे सो अण्णह्मि दु ण संकमदि दव्वे।
सो अण्णमसंकंता किह तं परिणामए दव्वं॥११२॥

अन्वय - *जह्मि दव्वे जो गुणो सो अण्णह्मि दव्वे दु ण संकमदि। अण्णमसंकंता सो तं दव्वं किह परिणामए।*

अर्थ - जिस द्रव्य में जो गुण होता है वह अन्य द्रव्य में संक्रमित नहीं होता है। अन्य को संक्रमित नहीं करता हुआ वह उस द्रव्य को कैसे परिणमित करेगा?

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि।
तं उहयमकुव्वन्तो तह्मि कहं तस्स सो कत्ता॥११३॥

अन्वय - *आदा पुग्गलमयह्मि कम्मह्मि तस्स दव्वगुणस्स ण कुणदि तह्मि तं उहयं अकुव्वंतो सो कहं कत्ता?*

अर्थ - आत्मा पुद्‌गलमय कर्मों में उसके द्रव्य गुण का कर्त्ता नहीं है। उस (पुद्‌गलमय कर्म) में उन दोनों को नहीं करता हुआ वह कैसे कर्त्ता है?

जीवह्मि हेदुभूदे बंधस्स दु पस्सिदूण परिणामं।
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमेत्तेण॥११४॥

अन्वय - *जीवह्मि हेदुभूदे (सदि) बंधस्स परिणामं पस्सिदूण दु जीवेण कम्मं कदं (इहि) उवयारमेत्तेण भण्णदि।*

अर्थ - जीव के हेतु-भूत होने पर बंध के परिणाम को देखकर जीव ने कर्म किया ऐसा उपचार मात्र से कहते हैं।

जोधेहिं कदे जुद्धे रायेण कदंति जप्पदे लोगो।
तह ववहारेण कदं णाणावरणादि जीवेण॥११५॥

अन्वय - *जोधेहिं कदे जुद्धे राएण कदं लोगो इति जप्पदे तह ववहारेण जीवेण णाणावरणादि कदं।*

अर्थ - योद्धाओं के द्वारा किये गये युद्ध में राजा ने किया ऐसा लोग कहते हैं। उसी प्रकार जीव के द्वारा ज्ञानावरणादि कर्म किये ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणाम एदि गिह्णदि य।
आदा पुग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं ॥ ११६ ॥

अन्वय - *आदा पुग्गलदव्वं उप्पादेदि करेदि य बंधदि परिणाम एदि गिह्णदि य ववहार णयस्स वत्तव्वं।*

अर्थ - जीव पुद्गल द्रव्य को उत्पन्न करता है, बाँधता है, परिणमन कराता है और ग्रहण करता है-यह व्यवहार नय का कथन है।

जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगोत्ति आलविदो।
तह जीवो ववहारा दव्व गुणुप्पादगो भणिदो ॥ ११७ ॥

अन्वय - *जह राया दोस गुण उप्पादगो इति ववहारा आलविदो तह जीवो दव्व गुण उप्पादगो ववहारा भणिदो।*

अर्थ - जिस प्रकार राजा (प्रजा में) दोष गुणों को उत्पन्न करने वाला है-ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। उसी प्रकार जीव द्रव्य के गुणों को उत्पन्न करने वाला है-ऐसा व्यवहार से कहा गया है। (यथा राजा तथा प्रजा)

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा॥११८॥

तेसिं पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरस वियप्पो।
मिच्छादिट्ठी आदी जाव सजोगिस्स चरिमंतं॥११९॥

मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य आसवा होंति।
पण बारह पणु विसा पण्णारसा होंति तं भेया॥१२०॥

एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसंभवा जह्मा।
ते जदि करंति कम्मं णवि तेसिं वेदगो आदा॥१२१॥

गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जह्मा।
तह्मा जीवो कत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि॥१२२॥

अन्वय - *खलु मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य चउरो पच्चया साम्मण्ण बंधकत्तारो भणंति बोद्धव्वा।*

पुणो वि तेसिं मिच्छादिट्ठि आदी जाव सजोगिस्स चरिमंतं इमो तेरस भेदो वियप्पो भणिदो।

मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य आसवा होंति। पण बारह पणु विसा पण्णारसा तं भेया होंति।

जह्मा खलु एदे पुग्गलकम्मुदयसंभवा अचेदणा जदि ते कम्मं करंति आदा तेसिं वेदगो णवि।

जह्मा गुणसण्णिदा एदे प्रच्चया कम्मं कुव्वंति तह्मा जीवो कत्ता गुणा य कम्माणि कुव्वंति।

अर्थ - वास्तव में मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग चार प्रत्यय सामान्य रूप से बंध के करने वाले कहे गये हैं-ऐसा जानना चाहिये।

और फिर भी उनमें मिथ्यादृष्टि आदि सयोग केवलि पर्यन्त तेरह भेद विकल्प रूप में कहे गये हैं।

मिथ्यात्व अविरति, कषाय और योग आस्रव होते हैं। पाँच, बारह, पच्चीस और पन्द्रह क्रमशः उनके भेद होते हैं।

क्योंकि ये वास्तव में पुद्गल कर्मोदय जनित अचेतन हैं। यदि वे कर्म को करते हैं, आत्मा उसका वेदन करने वाला भी नहीं है।

जिस कारण से गुण संज्ञा वाले ये प्रत्यय कर्म को करते हैं उस कारण से जीव कर्त्ता है और (वस्तुतः) कर्म गुणस्थान को करते हैं।

जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जदि अणण्णो।
जीवस्साजीवस्स य एवमणण्णत्तमावण्णं॥१२३॥

एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाजीवो।
अयमेयत्ते दोसो पच्चय णोकम्मकम्माणं॥१२४॥

अह पुण अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा।
जह कोहो तह पच्चय कम्मं णो कम्ममवि अण्णं॥१२५॥

अन्वय - *जह जीवस्स उवओगो अणण्ण तह जदि कोह वि अणण्णो एवं जीवस्स अजीवस्स य अणण्णत्तं आवण्ण॥*

एवमिह जो दु अजीवो तहा सो दु चेव णियमदो जीवो पच्चय णोकम्मकम्माणं एयत्ते अयं दोसो।

अह पुण कोहो अण्णो उवओगप्पगो चेदा अण्ण हवदि जह कोहो (अण्णो) तह पच्चय कम्मं णोकम्मं वि अण्ण॥

अर्थ - जिस प्रकार जीव का उपयोग अनन्य है उसी प्रकार यदि क्रोध भी अनन्य है तो जीव और अजीव अनन्यत्व को प्राप्त हो जायेंगे।

इस प्रकार यहाँ जो अजीव है, नियम से वह जीव हो जायगा, (जीव से) प्रत्यय कर्म नोकर्म के एकत्व में यह दोष है।

अथ फिर क्रोध अन्य है, उपयोगात्मक जीव अन्य है। जिस प्रकार क्रोध अन्य है वैसे ही प्रत्यय कर्म नोकर्म भी अन्य है।

जीवे ण सयं बद्धो ण सयं परिणमदि कम्मभावेण।
जदि पुग्गलदव्वमिणं अप्परिणामी तदा होदि॥१२६॥

कम्मइ य वग्गणाहि य अपरिणमंती हि कम्मभावेण।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा॥१२७॥

जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण।
तं सयमपरिणमंतं कह तु परिणामयदि णाणी॥१२८॥

अन्वय - *जदि इणं पुग्गलदव्वं जीवे ण सयं बद्धो ण सयं कम्मभावेण परिणमदि तदा अपरिणामी होदि।*

कम्मभावेण य अपरिणमंती हि कम्मइ वग्गणा हि संखसमओ संसारस्स अभावो पसज्जदे वा।

जीवो पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण परिणमयदे ते सयमपरिणमंतं णाणी कह तु परिणामयदि।

अर्थ - यदि यह पुद्गल द्रव्य रूप कार्माण वर्गणाएं जीव में स्वयं नहीं बंधी हैं और न ही स्वयं कर्म भाव से परिणमित हुई हैं तो वे अपरिणामी होती हैं।

कार्माण वर्गणाओं के कर्मभाव से (ज्ञानावरणादि रूप) परिणमित नहीं होने पर सांख्य मतानुसार संसार के अभाव का प्रसव हो जावेगा।

यदि जीव कार्माण वर्गणाओं को कर्म रूप में परिणमन कराता है तो स्वयं परिणमन नहीं करने वाली उन कार्माण वर्गणाओं को जीव कैसे परिणमन करायेगा?

ण सयं बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं।
जदि एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि॥१२९॥

अपरिणमंतं हि सयं जीवे कोहादिएहिं भावेहिं।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा॥१३०॥

पुग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं।
तं सयमपरिणमंतं कह परिणामएदि कोहं॥१३१॥

अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धि।
कोहो परिणामयदे जीवस्स कोहत्तमिदि मिच्छा॥१३२॥

कोहुवजुत्तो कोहो माणुवजुत्तो य माणमेवादा।
माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवदि लोहो॥१३३॥

अन्वय - *जदि तुज्झ एस जीवो सयं कम्मे ण समं बद्धो ण सयं कोहमादीहिं परिणमदि तदा अपरिणामी होदि।*

कोहादिएहिं भावेहिं सयं जीवे हि अपरिणमंते संसारस्स अभावो संखसमओ वा पसज्ञदे।

पुग्गलकम्मं कोहो जीवं कोहत्तं परिणामएदे। तं सयमपरिणमंतं कह तं कोहं परिणामएदि।

अह सयं अप्पा कोहभावेण परिणमदि एस दे बुद्धि। कोहो जीवस्स कोहत्तं परिणामयदे इदि मिच्छा।

कोहुवजुत्तो कोहो माणुवजुत्तो य माणमेवादा माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो लोहो हवदि।

अर्थ - यदि तेरा ऐसा जीव स्वयं कर्म में नहीं बंधता है और न ही स्वयं क्रोधादि रूप परिणमन करता है तब वह जीव अपरिणामी हो जायेगा।

क्रोधादि भावों से स्वयं जीव में परिणमन नहीं होने से संसार के अभाव रूप सांख्य दर्शन का प्रसव हो जायेगा।

पुद्गलकर्म जीव को क्रोधत्व रूप परिणमन कराता है तो स्वयं परिणमन नहीं करने वाले जीव को वह क्रोध कैसे परिणमन करायेगा?

यदि तेरे मत में आत्मा क्रोध भाव से स्वयं परिणमन करता है तो क्रोध (पुद्गल द्रव्य रूप) जीव को क्रोधत्व रूप परिणमन कराता है-यह मिथ्या है।

इसलिए क्रोधयुक्त (क्रोधोपयोगी) जीव क्रोध होता है। मानोपयोगी जीव मान होता है, मायोपयोगी जीव माया होता है और लोभोपयोगी जीव लोभ होता है।

जो संगं मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पयं सुद्धं।
तं णिस्संगं साहुं परमट्ठ वियाणया विंति॥१३४॥

अन्वय - *जो संगं मुइत्ता अप्पयं सुद्धं उवओगं जाणदि परमट्ठ वियाणया तं साहुं णिस्संगं विंति।*

अर्थ - जो परिग्रह को त्यागकर अपने शुद्ध उपयोग को जानता है परमार्थ के ज्ञाता उस साधु को परिग्रह रहित कहते हैं।

जो मोहं तु मुइत्ता णाणसहावाधियं मुणहि आद।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठ वियाणया विंति॥१३५॥

अन्वय - *जो तु मोहं मुइत्ता णाणसहावाधियं आदं मुणहि परमट्ठवियाणया तं साहुं जिदमोहं विंति।*

अर्थ - जो मोह को त्यागकर आत्मा को ज्ञान स्वभावाधिक मनन करते हैं, परमार्थ के ज्ञाता उस साधु को जितमोह कहते हैं।

जो धम्मं तु मुइत्ता जाणदि उवओगमप्पगं सुद्धं।
तं धम्मसंगमुक्कं परमट्ठवियाणया विंति॥१३६॥

अन्वय - *जो धम्मं तु मुइत्ता अप्पगं शुद्धं उवओगं जाणदि परमट्ठ वियाणया तं धम्मसंगमुक्कं विंति।*

अर्थ - जो धर्म द्रव्य को त्यागकर अपने शुद्ध उपयोग को जानता है परमार्थ के ज्ञाता उसको धर्म द्रव्य के संग से मुक्त कहते हैं।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स।
णाणिस्स दु णाणमओ अणाणमओ अणाणिस्स॥१३७॥

अन्वय - *आदा जं भावं कुणदि सो तस्स कम्मस्स कत्ता होदि। णाणिस्स दु णाणमओ अणाणिस्स अण्णाणमओ (भावो होदि)।*

अर्थ - आत्मा जिस भाव (विवक्षित क्रिया) को करता है वह उसी कर्म (विवक्षित क्रिया) का कर्त्ता होता है। इस तरह ज्ञानी के ज्ञानमय और अज्ञानी के अज्ञानमय भाव (विवक्षित क्रिया) होता है।

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तह्मा दु कम्माणि॥१३८॥

अन्वय - *अणाणिणो अण्णाणमओ भावो तेण कम्माणि कुणदि। णाणिस्स दु णाणमओ तह्मा दु कम्माणि ण कुणदि।*

अर्थ - अज्ञानी के भाव (विवक्षित क्रिया) अज्ञानमय होते हैं। उससे वह कर्मों को करता है। परन्तु ज्ञानी के ज्ञानमय भाव होते हैं जिससे वह कर्मों को नहीं करता है।

णाणमया भावादो णाणमओ चेव जायदे भावो।
जह्मा तह्मा णाणिस्स सव्वे भावा दु णाणमया॥१३९॥

अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो।
जह्मा तह्मा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स॥१४०॥

अन्वय - *जम्हा णाणमया भावादो णाणमओ चेव भावो जायदे तम्हा णाणिस्स दु सव्वे भावा णाणमया।*

जम्हा अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव भावो जायदे तह्मा अणाणिस्स (सव्वे) भावा अण्णाणमया।

अर्थ - जिस प्रकार ज्ञानमयी भाव से ज्ञानमयी भाव ही होते हैं उसी प्रकार ज्ञानी के सारे भाव ज्ञानमय होते हैं।

और जिस प्रकार अज्ञानमय भाव से अज्ञानमय भाव ही होता है उसी प्रकार अज्ञानी के (अज्ञान से) अज्ञानमय भाव होते हैं।

कणयमया भावादो जायंते कुंडलादयो भावा।
अयमइ अयादी अयादो जह जायंते तु कडयादी ॥१४१॥

अण्णाणमया भावा जायंते बहुविहा अण्णाणिस्स।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥१४२॥

अन्वय - *जह कणयमया भावादो कुंडलादयो भावा जायंते, अयमइ अयादी भावादो तु कडयादी जायंते तहा अण्णाणिस्स बहुविहा अण्णाणमया भावा जायंते। णाणिस्स दु सव्वे भावा णाणमया होंति।*

अर्थ - जिस प्रकार कनकमय पदार्थों से कुण्डलादि पर्याय होती हैं और लौहमय पदार्थों से कड़ाही (कड़ी) आदि पर्याय ही होती हैं।

अज्ञानी के अनेक प्रकार के अज्ञानमय भाव होते हैं उसी प्रकार ज्ञानी के सारे भाव ज्ञानमय ही होते हैं।

मिच्छत्तस्स दु उदओ जं जीवाणं अतच्च सद्दहणं।
असंजमस्स दु उदओ जं जीवाणं अविरदत्तं॥१४३॥

अण्णाणस्स दु उदओ जं जीवाणं अतच्चउवलद्धी।
जो दु कसाउवओगो सो जीवाणं कसाउदओ॥१४४॥

तं जाण जोग उदयं जं जीवाणं तु चिट्ठउच्छाओ।
सोहणमसोहणं वा कायव्वो विरदिभावो वा॥१४५॥

एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागदं जं तु।
परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेणं॥१४६॥

तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागदं जइया।
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं॥१४७॥

अन्वय - *जीवाणं जं अतच्चसद्दहणं मिच्छत्तस्स दु उदओ जं जीवाणं अविरदत्तं असंजमस्स दु उदओ।*

जं जीवाणं अतच्चउवलद्धी अण्णाणस्स दु उदओ जो दु कसाउवओगो सो जीवाणं कसाउदओ।

जं जीवाणं तु चिट्ठउच्छाओ तं जोग उदयं जाण। सोहणं वा कायव्वो असोहणं वा विरदि भावो (कायव्वो)।

एदेसु हेदुभूदेसु जं तु कम्मइयवग्गणागदं णाणावरणादि भावेण अट्ठविहं परिणमदे।

जइया तं खलु कम्मइयवग्गणागदं जीवणिबद्धं तइया दु जीवो परिणामभावाणं हेदु होदि।

अर्थ - जीवों के जो तत्व का विपरीत श्रद्धान है वह मिथ्यात्व का उदय है और जीवों के जो अविरति है वह असंयम का उदय है और जीवों के जो तत्व की विपरीत उपलब्धि है वह अज्ञान का उदय है और जीवों के जो कलुष उपयोग हैं वह कषाय का उदय है। जीवों के जो चित्त का उत्साह है (मन-वचन-काय की क्रिया=चेष्टा) उसको योग का उदय जानो। अत: अशुभ से विरति और शुभ में प्रवृत्ति करना चाहिये।

इनके कारणभूत होने पर जो आई हुई कार्माण वर्गणाएं हैं वे आठ प्रकार के ज्ञानावरणादि कर्मभावों में परिणमन करती हैं।

जब आई हुई कार्माण वर्गणाएं जीव निबद्ध होती हैं तब जीव ज्ञानावरणादि रूप कर्मभावों के परिणमन में हेतु होता है।

जीवस्स दु कम्मेण य सह परिणामा दु होंति रागादी।
एवं जीवो कम्मं च दो वि रागादिमावण्णा ॥१४८॥

एकस्स दु परिणामो जायदि जीवस्स रागामादीहिं।
तह्मा कम्मोदय हेदुहिं विणा जीवस्स परिणामो ॥१४९॥

अन्वय - *कम्मेण य सह जीवस्स दु रागादी परिणामा दु होंति। एवं जीवो कम्मं च दो वि रागादिमावण्णा। एकस्स जीवस्स दु रागामादीहिं परिणामो जायदि तह्मा कम्मोदय हेदुहिं विणा जीवस्स परिणामो।*

अर्थ - कर्म सहित जीव के रागादि परिणाम होते हैं तो जीव और कर्म दोनों ही रागादि को प्राप्त हो जावेंगे और यदि अकेले जीव के ही रागादि परिणाम होते हैं तो कर्मोदय हेतु के बिना ही जीव के रागादि परिणाम हो जाते हैं? (ऐसा मानना पड़ेगा)।

जइ जीवेण सहच्चिय पुग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो।
एवं पुग्गलजीवा हु दो वि कम्मत्तमावण्णा॥१५०॥

एकस्स दु परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण।
तह्मा जीवभावहेदूहिं विणा कम्मस्स परिणामो॥१५१॥

अन्वय - *जइ जीवेण सह चेव पुग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो एवं पुग्गलजीवा दो वि कम्मत्तमावण्णा। एकस्स पुग्गलदव्वस्स दु कम्मभावेण परिणामो तह्मा कम्मस्स परिणामो जीवभावहेदूहिं विणा? (कथं)*

अर्थ - यदि जीव के साहचर्य से (मिलकर) पुद्गल द्रव्य का कर्म रूप परिणमन होता है तो जीव और पुद्गल दोनों ही कर्मत्व को प्राप्त हो जावेंगे।

यदि अकेले पुद्गल द्रव्य का कर्मभाव (ज्ञानावरणादि रूप) से परिणमन हो तो यह परिणमन जीव भाव के हेतु के बिना कर्म का परिणमन कैसे हो सकता है?

जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणय भणिदं।
सुद्धणयस्स दु जीवे अबद्धपुट्ठं हवदि कम्मं॥१५२॥

अन्वय - *जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणय भणिदं सुद्धणयस्स दु जीवे कम्मं अबद्धपुट्ठं हवदि।*

अर्थ - जीव में कर्म बंधा हुआ है और स्पृष्ट हुआ है यह व्यवहारनय से कहा गया है। शुद्धनय के जीव में तो कर्म बंधे और स्पृष्ट नहीं होते हैं।

कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एदं तु जाण णयपक्खं।
णय पक्खातिक्कंतो भण्णदि जो सो समयसारो॥१५३॥

अन्वय - *जीवे कम्मं बद्धं एवं अबद्धं तु णयपक्खं जाण। जो णय पक्खातिक्कंतो सो समयसारो भण्णदि।*

अर्थ - जीव में कर्म बंधा हुआ है-बंधा हुआ नहीं है-ऐसा नयपक्ष है। जो नय पक्ष (एकान्त) से अतिक्रान्त (उल्लंघित) है वही समय (आगम) का सार (फल) कहा जाता है।

दोण्हं पि णया भणिदं जाणदि णवरिं तु समयपडिबद्धो।
ण दु णयपक्खं गेण्हदि किंचिवि णयपक्खपरिहीणो॥१५४॥

अन्वय - *णयपक्खपरिहीणो समयपडिबद्धो दु णवरि दोण्हं पि णया भणिदं तु जाणदि। किंचिवि णयपक्खं ण गेण्हदि।*

अर्थ - नय पक्ष से परिहीन समय (आगम) प्रतिबद्ध केवल दोनों नयों के द्वारा कहे गए को जानता है, किसी भी एक नय पक्ष को ग्रहण नहीं करता है।

सम्मद्दंसण णाणं एदं लहदित्ति णवरि ववदेसं।
सव्वणयपक्खरहिदो भण्णदि जो सो समयसारो॥१५५॥

अन्वय - *इति जो सव्व णयपक्खरहिदो सो समयसारो भण्णदि एदं ववदेसं णवरि सम्मद्दंसणणाणं लहदि।*

अर्थ - इस प्रकार जो सभी नय पक्षों से रहित (अनेकान्तात्मक/स्याद्वादमयी) है वह आगम का सार कहा गया है। इस प्रतिपादन (कथन) को केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग् ज्ञान ग्रहण करता है (मिथ्यादर्शन और मिथ्या ज्ञान ग्रहण नहीं करता है)।

●●

पुण्यपापाधिकार

कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
किह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि॥१५६॥

अन्वय - *असुहं कम्मं कुसीलं सुहकम्मं चापि सुसीलं जाणह। जं संसारं पवेसेदि तं सुशीलं किह होदि?*

अर्थ - अशुभ कर्म को कुशील और शुभ कर्म को सुशील जानो। जो संसार में प्रवेश कराता है वह सुशील कैसे होता है? अर्थात् वह सुशील नहीं होगा, क्योंकि स्वभावरत वैराग्य सम्पन्न सम्यग्दृष्टि जीव के व्रत आदि शुभ कर्म संसार से विरक्ति कराते हैं, अतः वे सुशील हैं। इसके विपरीत मिथ्यादृष्टि जीव के व्रत आदि शुभ कर्म संसार में प्रवेश कराने वाले हैं, अतः वे कुशील हैं।

सौवण्णियं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं॥१५७॥

अन्वय - *जह पुरिसं सौवण्णियं पि कालायसं पि णियलं बंधदि एवं जीवं कदं सुहं असुहं वा कम्मं बंधदि।*

अर्थ - जिस प्रकार पुरुष को स्वर्णाभूषण भी और कांसे के आभूषण भी बाँधते हैं उसी प्रकार जीव को उसके द्वारा किये गये शुभ और अशुभ कर्म भी बाँधते हैं।

तह्मा दु कुसीलेहि रागं मा काहि मा व संसग्गो।
साहिणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण॥१५८॥

अन्वय - *तह्मा दु कुसीलेहि य रागं मा काहि संसग्गो मा व। कुशीलसंग्गरायेण हि साहिणो विनासो।*

अर्थ - इस कारण कुशील से राग मत करो और संसर्ग मत करो। कुशील के संसर्ग व राग से स्वाधीनता का नाश नियम से होता है (पराधीनता होती है)।

जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रागकरणं च॥१५९॥

एमेव कम्मपयडी सीलसहावं हि कुच्छिदं णादुं।
वज्जंति परिहरंति य तं संसग्गं सहावरदा॥१६०॥

अन्वय - *जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता तेण समयं संसग्गं रागकरणं य वज्जेदि। एमेव सहावरदा कुच्छिदं सीलसहावं कम्मपयडी णादुं तं वज्जंति संसग्गं य परिहरन्ति।*

अर्थ - जैसे कोई पुरुष कुत्सित स्वभाव वाले पुरुष को जानकर उसके साथ पूर्ण रूप से प्रीति व सम्पर्क को छोड़ देता है उसी प्रकार स्वभावरत पुरुष के कुत्सित शील स्वभाव वाली कर्म प्रकृतियों को जानकर उसको छोड़ देते और संसर्ग का परिहार करते हैं।

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥१६१॥

अन्वय - *रत्तो जीवो बंधदि विरागसंपण्णो जीवो कम्मं मुंचदि एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।*

अर्थ - रागी जीव कर्मों को बाँधता है और वैराग्य सम्पन्न जीव कर्म को त्याग करता है-यह जिनेन्द्र भगवान का उपदेश है। इसलिए कर्म में राग मत कर।

परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी।
तह्मि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं॥१६२॥

अन्वय - *सुद्धो समओ खलु परमट्ठो जो केवली णाणी मुणी तह्मि सहावे ट्ठिदा मुणिणो णिव्वाणं पावंति।*

अर्थ - वास्तव में शुद्ध (पूर्वापरदोष रहित) समय (आगम) परमार्थ है जो केवली, श्रुतकेवली और आरातीय द्वारा कथित है उस स्वभाव में स्थित मुनि निर्वाण को प्राप्त करते हैं। (आगम के तीन वक्ता हैं-सर्वार्थ सिद्धि)

परमट्ठम्मि य अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारयदि।
तं सव्वं बालतवं बालवदं विंति सव्वण्हु॥१६३॥

अन्वय - *परमट्ठम्मि य अठिदो जो तवं कुणदि वदं च धारयदि तं सव्वं सव्वण्हु बालतवं बालवदं विंति।*

अर्थ - जो (उपर्युक्त) परमार्थ में स्थित नहीं है और तप को करते हैं तथा व्रत को धारण करते हैं उस सब को सर्वज्ञ देव बाल तप और बालव्रत कहते हैं।

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठबाहिरा जे तेण दु ते होंति अण्णाणि॥१६४॥

अन्वय - *जे परमट्ठबाहिरा वदणियमाणि सीलाणि धरंता तहा तवं च कुव्वंता ते णदु अण्णाणि होंति।*

अर्थ - जो परमार्थ से बाहर हैं अर्थात् जो परमार्थ में स्थित नहीं हैं वे व्रत, नियम और शील को धारण करते हुए भी तथा तप को करते हुए भी वे अज्ञानी होते हैं।

परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।
संसारगमणहेदुं वि मोक्खहेउं अजाणंता॥१६५॥

अन्वय - *संसारगमणहेदुं मोक्खहेउं वि अजाणंता जे परमट्ठबाहिरा ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति।*

अर्थ - संसार के गमन के हेतु और मोक्ष के हेतु को नहीं जानने वाले जो परमट्ठ (परमार्थ) आगम से बाहर हैं वे अज्ञान से पुण्य की चाह करते हैं।

जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।
रागादी परिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो॥१६६॥

अन्वय - *जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं रागादी परिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो।*

अर्थ - जीवादि (नव पदार्थ) का श्रद्धान सम्यक्त्व है, उनका जानना सम्यग्ज्ञान है, रागादि का परिहार करना सम्यक् चारित्र है-यही मोक्ष का मार्ग है।

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारे ण विदुसा पवट्टंति।
परमट्ठमस्सिदाणं दु जदीण कम्मक्खओ होदि॥१६७॥

अन्वय - *विदुसा णिच्छयट्ठं मोत्तूण ववहारे ण पवट्टंति परमट्ठमस्सिदाणं दु जदीण कम्मक्खओ होदि।*

अर्थ - विद्वान लोग (ज्ञानी) निश्चयार्थ को छोड़कर व्यवहार में प्रवर्तन नहीं करते हैं। क्योंकि परमार्थ के आश्रित यतियों के ही कर्म का क्षय होता है (विद्वानों की प्रवृत्ति निश्चय और व्यवहार दोनों में होती है)।

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणोणिसत्तो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णादव्वं॥१६८॥

वत्थस्स सेदभावो जह णासदि मलविमेलणोणिसत्तो।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णादव्वं॥१६९॥

वत्थस्स सेदभावो जह णासदि मलविमेलणोणिसत्तो।
कसायाच्छण्णं तह दु चारित्तं होदि णादव्वं॥१७०॥

(त्रिकलम्)

अन्वय - *जह मलविमेलणोणिसत्तो वत्थस्स सेदभावो णासदि तह मिच्छत्तमलोच्छण्णं सम्मत्तं खु णादव्वं। जह मलविमेलणोणिसत्तो वत्थस्स सेदभावो णासदि तह अण्णाण मलोच्छण्णं णाणं होदि णादव्वं। जह मलविमेलणोणिसत्तो वत्थस्स सेदभावो णासदि तह दु कसायाच्छण्णं चारित्तं होदि णादव्वं।*

अर्थ - जिस प्रकार मल के संयोग से वस्त्र का श्वेत भाव नष्ट हो जाता है उसी प्रकार मिथ्यात्व मल से सम्यक्त्व को नष्ट जानना चाहिये।

जिस प्रकार मल के संयोग से वस्त्र का श्वेतभाव नष्ट हो जाता है उसी प्रकार अज्ञान मल से ज्ञान नष्ट होता है (ऐसा जानना चाहिये)।

जिस प्रकार मल के संयोग से वस्त्र का श्वेत भाव नष्ट हो जाता है उसी प्रकार कषाय मल से चारित्र नष्ट होता है (ऐसा जानना चाहिये)।

सो सव्वणाणदरसी कम्मरयेण णियेणवच्छण्णो।
संसारसमावण्णो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं॥१७१॥

अन्वय - *सो सव्वणाणदरसी णियेण कम्मरयेण वच्छण्णो संसारसमावण्णो सव्वं सव्वदो णवि जाणदि।*

अर्थ - वह समग्र रूप से ज्ञाता दृष्टा जीव अपने निजी कर्म रज से आच्छादित (आवरणित) हुआ संसार दशा को प्राप्त होता हुआ सबको समग्र रूप से नहीं जानता है।

सम्मत्तं पडिणिबद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहिं परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठि मुणेअव्वो॥१७२॥

णाणस्स पडिणिबद्धं अण्णाणं जिणवरेहिं परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होई णादव्वो॥१७३॥

चारित्तपडिणिबद्धं कसायं जिणवरेहिं परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णायव्वो॥१७४॥

अन्वय - *जिणवरेहिं सम्मत्तं पडिणिबद्धं मिच्छत्तं परिकहियं।*
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठि मुणेअव्वो।

जिणवरेहिं णाणस्स पडिणिबद्धं अण्णाणं परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होई णादव्वो।

जिणवरेहिं चारित्तपडिणिबद्धं कसायं परिकहियं।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णायव्वो।

अर्थ - जिनेन्द्र के द्वारा सम्यक्त्व की विरोधी बंधी हुई (प्रकृति) को मिथ्यात्व कहा गया है और उसके उदय से जीव मिथ्या दृष्टि है-ऐसा जानना चाहिये।

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा ज्ञान की विरोधी बंधी हुई (प्रकृति) को अज्ञान कहा गया है और उसके उदय से जीव अज्ञानी (मिथ्याज्ञानी) होता है-ऐसा जानना चाहिये।

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा चारित्र के विरोधी बंधी हुई (प्रकृति) को कषाय कहा गया है और उसके उदय से जीव विपरीत चरित्र वाला होता है-ऐसा जानना चाहिये।

आश्रवाधिकार

मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य सण्णसण्णा दु।
बहुविहभेदा जीवे तस्सेव अणण्णपरिणामा॥१७५॥

णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति।
तेसिंपि होदि जीवो य रागदोसादि भावकरो॥१७६॥

अन्वय - *मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य सण्णसण्णा दु जीवे बहुविहभेदा तस्सेव अणण्णपरिणामा। ते दु णाणावरणादीयस्स कम्मस्स कारणं होंति, तेसिंपि य रागदोसादि भावकरो जीवो होदि।*

अर्थ - मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग संज्ञा-असंज्ञा भेद से दो प्रकार के होते हैं और जीव में अनेक प्रकार के भेदों वाले उस (जीव) के ही अनन्य परिणाम हैं और वे (परिणाम) ही ज्ञानावरणादि कर्म के कारण होते हैं और उनमें भी राग दोष आदि भावों का करने वाला जीव होता है।

णत्थि दु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो।
संते पुव्वणिबद्धे जाणदि सो ते अबंधंतो॥१७७॥

अन्वय - *सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो आसवबंधो दु णत्थि। ते पुव्वणिबद्धे संते जाणदि सो अबंधंतो।*

अर्थ - सम्यग्दृष्टि के आश्रव का निरोध (संवर) होता है, परन्तु आश्रव और बंध नहीं होता है तथा वह उन पूर्व में बंधे हुए कर्मों को जानता है। अत: वह बन्ध करने वाला नहीं है।

भावो रागादि जुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो।
रायादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि॥१७८॥

अन्वय - *जीवेण कदो रागादिजुदो भावो दु बंधगो भणिदो। रायादिविप्पमुक्को अबंधगो णवरि जाणगो।*

अर्थ - जीव से किया गया रागादि युक्त भाव बंधकर्त्ता कहा गया है। रागादि से विशेष और प्रकृष्ट रूप से मुक्त अबन्धक है और केवल वही ज्ञायक है।

पक्के फलम्मि पडिदे जह ण फलं बज्झदे पुणो विंटे।
जीवस्स कम्मभावे पड़िदे ण पुणोदयमुवेहिं॥१७९॥

अन्वय - *जह पक्के फलम्मि पड़िदे फलं पुणो विंटे ण बज्झदे जीवस्स कम्मभावे पड़िदे ण पुणोदयमुवेहिं।*

अर्थ - जिस प्रकार पका हुआ फल झड़ जाने पर (वह) पुनः डाली में नहीं बंधता है उसी प्रकार जीव के कर्मभाव के झड़ जाने पर (यानि उदय में आकर खिरने पर) पुनः उदय को प्राप्त नहीं होता है।

पुढवी पिंडसमाणा पुव्वणिबद्धा दु पच्चया तस्स।
कम्मसरीरेण दु ते बद्धा सव्वे वि णाणिस्स॥१८०॥

अन्वय - *तस्स णाणिस्स पुव्वणिबद्धा दु पच्चया पुढवी पिंडसमाणा ते सव्वे वि कम्मसरीरेण दु बद्धा।*

अर्थ - उस ज्ञानी के (जिसके कर्म उदय में आकर निर्जरित होते हैं अर्थात् नवीन बन्ध नहीं कराते हैं) पूर्व में बंधे हुए प्रत्यय (मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग) पृथ्वी के पिण्ड के समान हैं। (अर्थात् नवीन बन्ध के प्रति अकिंचित्कर हैं) वे सब तो उसके कर्म शरीर (कार्माण शरीर) से बंधे हुए हैं।

चऊविह अणेयभेयं बज्झंते णाणदंसणगुणेहिं।
समये समये जह्मा तेण अबंधुत्ति णाणी दु॥१८१॥

अन्वय - *जह्मा चऊविह (अ)णाण दंसणगुणेहिं समये समये अणेयभेयं बज्झंते। तेण णाणी दु अबंधुत्ति।*

अर्थ - जिससे (मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग) ये चार प्रत्यय अज्ञान और अदर्शन (मिथ्या दर्शन) गुणों से समय-समय पर अनेक प्रकार के कर्मों को बांधते हैं उससे ज्ञानी तो अबंधक है।

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणो वि परिणमइ।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो अबंधगो भणिदो॥१८२॥

अन्वय - *पुणो जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो अण्णत्तं णाणगुणो वि परिणमइ तेण दु सो अबंधगो भणिदो।*

अर्थ - पुनः जिस कारण से जघन्य ज्ञान गुण से अन्य ज्ञान गुण परिणमन करता है उससे वह अबंधक कहा गया है।

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण।
णाणी तेण दु बज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण॥१८३॥

अन्वय - *जं दंसणणाणचरित्तं जहण्णभावेण परिणमदे णाणी तेण विविहेण पुग्गलकम्मेण दु बज्झदि।*

अर्थ - जब दर्शन-ज्ञान-चारित्र जघन्य भाव से परिणमन करता है, ज्ञानी उससे विविध पुद्‌गल कर्म से बंधता है।

सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स।
उवओगप्पाओगं बज्झंते कम्मभावेण॥१८४॥

संता दु णिरुवभोज्ञा बाला इत्थी जहेव पुरिसस्स।
बंधदि ते उवभोज्ञा तरुणी इत्थी जह णरस्स॥१८५॥

होदूण णिरुवभोज्ञा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्ञा।
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं॥१८६॥

एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो भणिदो।
आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा॥१८७॥

अन्वय - *सम्मदिट्ठिस्स दु पुव्वणिबद्धा सव्वे पच्चया संति उवओगप्पाओगं कम्मभावेण बज्झंते।*

जहेव पुरिसस्स बाला इत्थी दु णिरुवभोज्झा संता तरुणी इत्थी जह णरस्स उवभोज्झा ते बंधदि।

सत्तट्ठविहा भूदा णिरुवभोज्झा होदूण जह उवभोज्झा हवंति तह णाणावरणादि भावेहिं बंधदि।

एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो भणिदो आसवभावाभावे पच्चया बंधगा ण भणिदा।

अर्थ - सम्यग्दृष्टि के पूर्व में निबद्ध समस्त प्रत्यय (मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, योग) विद्यमान हैं, परन्तु वे उपयोग से प्रयोग होने पर कर्मभाव (ज्ञानावरणादि कर्मरूप) से बंधते हैं अर्थात् प्रयोग में नहीं आने पर सम्यग्दृष्टि के बंध नहीं होता है।

जिस प्रकार पुरुष के बाला स्त्री निरुपभोग्य है और तरुणी स्त्री उपभोग करने पर (राग भाव में) बांधती है। उसी प्रकार सत्ता में स्थित आठ प्रकार के निरुपभोग्य उदय में आने पर उपभोग करने पर आठ प्रकार के (ज्ञानावरणादि) कर्म भावों से बांधते हैं।

इस कारण सम्यग्दृष्टि (उपभोग न करने से) जीव अबंधक कहा गया है, क्योंकि आस्रव भावों के अभाव में प्रत्यय बंधक नहीं कहे गये हैं।

रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स।
तह्मा आसवभावेण विणा हेदु ण पच्चया तह्मा॥१८८॥

हेदू चदुवियप्पो अट्ठ वियप्पस्स कारणं होदि।
तेसिंपि रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति॥१८९॥

अन्वय - *सम्मदिट्ठिस्स रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि। तह्मा आसव भावेण विणा पच्चया ण हेदु।*

चदुवियप्पो हेदू अट्ठ वियप्पस्स कारणं होदि। तेसिंपि रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति।

अर्थ - सम्यग्दृष्टि के राग, दोष और मोह आश्रव नहीं हैं इसलिए आश्रव भाव के बिना प्रत्यय (बंध में) कारण नहीं होते हैं।

चार प्रकार का हेतु आठ प्रकार के कर्मों का कारण होता है और उनका भी कारण रागादि होते हैं और उनके अभाव में बन्ध नहीं होता है।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेयविहं।
मंसवसारुहिराई भावे उदरग्गिसंजुत्तो॥१९०॥

तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुविअप्पं।
बज्झंते कम्मं ते ण य परिहीणा दु ते जीवा॥१९१॥

अन्वय - *जह पुरिसेण गहिदो आहारो उदरग्गिसंजुत्तो सो अणेयविहं मंसवसारुहिराई भावे परिणमदि तह णाणिस्स पुव्वं दु बद्धा जे पच्चया ते बहुविअप्पं कम्मं बज्झंते। परिहीणा दु ते जीवा ण। (कम्मं ण बज्झंते)*

अर्थ - जिस प्रकार पुरुष के द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदराग्नि से संयुक्त होकर मांस, वसा (चरबी), रुधिर आदि अनेक प्रकार के भावों में परिणमित होता है उसी प्रकार ज्ञानी के पूर्व में बंधे हुए जो प्रत्यय हैं वे बहु विकल्प रूप (अनेक प्रकार के) कर्म बांधते हैं और जो उन प्रत्ययों से रहित हैं वे जीव बंध नहीं करते हैं।

●●

संवराधिकार

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि को वि उवओगो।
कोहे कोहो चेवहि उवओगे णत्थि खलु कोहो॥१९२॥

अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो।
उवओगम्हि य कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि॥१९३॥

एदं तु अविवरीयं णाणं जइया दु होदि जीवस्स।
तइया ण किंचि कुव्वइ भावं उवओगसुद्धप्पा॥१९४॥
(त्रिकलम्)

अन्वय - *उवओगे उवओगो कोहादिसु को वि उवओगो णत्थि कोहे कोहो चेवहि उवओगे खलु कोहो णत्थि।*

अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि उवओगो णत्थि उवओगह्मि य कम्मं णो कम्मं चावि णो अत्थि।

एदं दु अविवरीयं णाणं जइया जीवस्स दु होदि तइया उवओग सुद्धप्पा किंचि भावं ण कुव्वइ।

अर्थ - उपयोग में उपयोग है, क्रोधादि (द्रव्य प्रत्यय) में कोई उपयोग नहीं है। क्रोध में ही क्रोध है और वस्तुतः उपयोग में क्रोध नहीं है।

आठ प्रकार के कर्म और नो कर्म में भी उपयोग नहीं है और उपयोग में भी कर्म और नो कर्म नहीं है।

यह अविपरीत ज्ञान जब जीव के होता है तब उपयोग-शुद्ध आत्मा कुछ भी भाव नहीं करता है।

जह कणयमग्गितवियं पि कणयसहावं ण तं परिच्चयदि।
तह कम्मोदयतविओ ण जहदि णाणी दु णाणित्तं ॥१९५॥

एवं णाणी जाणदि अण्णाणी मुणदि रागमेवादं।
अण्णाणतमोच्छण्णां आदसहावं अयाणंतो ॥१९६॥

(युग्मम्)

अन्वय - *जह अग्गितवियं पि कणयं तं कणयसहावं ण परिच्चयदि तह कम्मोदयतविओ णाणी दु णाणित्तं ण जहदि।*

णाणी एवं जाणदि अण्णाणतमाच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो अण्णाणी रागमेवादं मुणदि।

अर्थ - जैसे अग्नि में तपाया हुआ कनक (सुवर्ण) उस अपने सुवर्ण भाव (स्वभाव) को नहीं छोड़ता है उसी प्रकार कर्मोदय से तप्त (इष्ट वियोग अनिष्टयोग) होने पर भी सम्यग्ज्ञानी अपने ज्ञानत्व को नहीं छोड़ता है। ज्ञानी इसी प्रकार जानता है, किन्तु अज्ञान (विपरीत ज्ञान) रूपी अन्धकार से आच्छन्न (ढका हुआ) और आत्म स्वभाव को नहीं जानता अथवा विपरीत जानता हुआ अज्ञानी राग को ही आत्मा जानता है, मानता है, श्रद्धान करता है।

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धमेवप्पयं लहदि जीवो।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पगं लहदि॥१९७॥

अन्वय - *सुद्धं तु वियाणंतो जीवो सुद्धमेवप्पयं लहदि। असुद्धं दु जाणंतो (जीवो) असुद्धमेवप्पगं लहदि।*

अर्थ - शुद्ध को विशेष प्रकार से जानने वाला जीव शुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है। अशुद्ध को जानने वाला जीव तो अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है।

अप्पाणमप्पणा रुंभिदूण पुण्णपाव जोगेसु।
दंसणणाणह्मि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णह्मि॥१९८॥

जो सव्वसंगमुक्को झायई अप्पाणमप्पणो अप्पा।
णवि कम्मं णो कम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं॥१९९॥

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमइयं अणण्णमयं।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं॥२००॥

अन्वय - *अप्पाणं अप्पणा रुंभिदूण दसंणणाणह्मि ठिदो अण्णम्हि जो दो पुण्णपाव जोएसु इच्छाविरदो सव्वसंगमुक्को अप्पा अप्पणो अप्पाणं झायई।*

चेदा कम्मं णोकम्मं एयत्तं णवि चिंतेदि अणण्णमयं दंसणणाणमइयं अप्पाणं झायंतो सो अचिरेण कम्मविमुक्कं अप्पाणं एव लहदि।

अर्थ - अपने को अपने से रोककर दर्शन ज्ञान में स्थित होकर जो अन्य दोनों पुण्य पाप योगों में इच्छा विरत होकर सर्व परिग्रह से मुक्त होकर आत्मा को आत्मा में ध्याता है, जो जीव कर्म-नोकर्म के एकत्व का चिंतन नहीं करता है, अन्य में मन रहित (अपने में मन वाला) दर्शन ज्ञानमयी आत्मा का ध्यान करता है सो शीघ्र ही कर्म से विमुक्त आत्मा को प्राप्त करता है।

उवदेसेण परोक्खं रूवं जह पस्सिदूण णादंति।
भण्णादि तहेव धिप्पदि जीवो दिट्ठो य णादो य॥२०१॥

अन्वय - *जह उवदेसेण परोक्खं रूवं पस्सिदूण णादंति भण्णादि धिप्पदि य तहेव जीवो दिट्ठो णादो।*

अर्थ - जिस प्रकार उपदेश से परोक्ष रूप को श्रद्धान कर कहता है (मानता है) और धारण करता है (ग्रहण करता है) उसी प्रकार जीव श्रद्धान किया और जाना जाता है।

को विदिदट्ठो साहू संपडि काले भणिज्ज रूवमिणं।
पच्चक्खमेव दट्ठो परोक्ख णाणे पवट्टुंतं॥२०२॥

अन्वय - *संपडि काले परोक्खणाणे पवट्टुतं विदिदट्ठो को साहू इणं रूवं पच्चक्खमेव दट्ठो भणिज्ज।*

अर्थ - इस काल में परोक्ष ज्ञान में प्रवर्त्तन करता हुआ विदितार्थ (पदार्थ को जानने वाला) कौन साधु इस रूप को (मैंने) प्रत्यक्ष देखा है-ऐसा कहता है।

तेसिं हेदू भणिया अज्झवसाणाणि सव्वदरसीहिं।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य जोगो य॥२०३॥

हेदू अभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो॥२०४॥

कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायइ णिरोहो।
णो कम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होई॥२०५॥

अन्वय - *तेसिं हेदू सव्वदरसीहिं मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदि भावो य जोगो य अज्झवसाणाणि भणिया। हेदू अभावे णियमा णाणिस्स आसवणिरोहो जायदि। आसवभावेण विणा कम्मस्स वि णिरोहो जायदि। कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं च णिरोहो जायइ णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होई।*

अर्थ - उनका हेतु सर्वज्ञदेव द्वारा मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरत भाव, योग और अध्यवसानों को कहा गया है। उन हेतुओं के अभाव में नियम से ज्ञानी के आश्रव निरोध (संवर) होता है और आश्रव भाव के बिना (अभाव में) कर्म का निरोध होता है। कर्म का निरोध होने से नोकर्म का निरोध होता है और नोकर्म का निरोध होने से संसार का निरोध होता है।

●●

निर्जराधिकार

उवभोज्ञमिंदियेहि य दव्वाणमचेदणाणमिदराणं।
जं कुणदि सम्मदिट्ठि तं सव्वं णिज्ञर णिमित्तं॥२०६॥

अन्वय - *सम्मदिट्ठि अचेदणाणमिदराणं दव्वाणं इंदियेहि जं उवभोज्ञं कुणदि तं सव्वं णिज्ञरणिमित्तं।*

अर्थ - सम्यग्दृष्टि जीव अचेतन और चेतन दोनों प्रकार के द्रव्यों का इन्द्रियों से जो उपभोग करता है वह सब निर्जरा के निमित्त होता है।

दव्वे उवभुज्ञंते णियमा जायदि सुहं वा दुक्खं वा।
तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि अथ णिज्ञरं जादि॥२०७॥

अन्वय - *दव्वे उवभुज्ञंते णियमा सुहं वा दुक्खं वा जायदि। उदिण्णं तं सुहदुक्खं वेददि अथ णिज्ञरं जादि।*

अर्थ - द्रव्य का उपभोग करने पर नियम से सुख और दुःख होता है। उदीर्ण हुए उस सुख और दुःख को वेदन (अनुभव) करता है तदनन्तर उसकी निर्जरा हो जाती है।

जह विसमुवभुञ्जंतो विज्ञो पुरिसो ण मरणमुवयादि।
पुग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव बुद्धदे णाणी॥२०८॥

अन्वय - *जह विज्ञो पुरिसो विसमुवभुञ्जंतो मरणं ण उवयादि तह णाणी पुग्गलकम्मस्सुदयं भुंजदि णेव बुद्धदे।*

अर्थ - जिस प्रकार विज्ञ पुरुष विष का उपभोग करते हुए भी मरण को प्राप्त नहीं होता है उसी प्रकार ज्ञानी पुद्गल कर्म के उदय को भोगता है फिर भी बोध को प्राप्त नहीं करता है।

जह मज्जं पिवमाणो अविरदि भावेण मज्जदि ण पुरिसो।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण बज्झदि तहेव॥२०९॥

अन्वय - *जह अविरदि भावेण मज्जं पिवमाणो पुरिसो ण मज्जदि तहेव दव्वुवभोगे अविरदो णाणी वि ण बज्झदि।*

अर्थ - जैसे अविरति भाव से आसव-अरिष्ट को पीने वाला पुरुष उन्मत्त नहीं होता है वैसे ही द्रव्य के उपभोग में अरत ज्ञानी भी नहीं बंधता है।

सेवंतोवि ण सेवदि असेवमाणो वि सेवगो कोवि।
पगरणचेट्ठा कस्सवि ण य पागरणोत्ति सो होदि॥२१०॥

अन्वय - *कोवि सेवंतोवि ण सेवदि असेवमाणो वि (कोवि) सेवगो कस्सवि पगरणचेट्ठा ण य सो पागरणोत्ति होदि।*

अर्थ - कोई सेवन करता हुआ भी सेवन नहीं करता है और कोई नहीं सेवन करता हुआ भी सेवन करने वाला होता है। किसी के प्रकरण में चेष्टा होती है और वह प्राकरणिक नहीं होता है और किसी के प्रकरण में चेष्टा नहीं होती है वह प्राकरणिक है।

पुग्गलकम्मं कोहो तस्स विवागोदयो हवदि एसो।
ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो दु अहमिक्को॥२११॥

अन्वय - *कोहो पुग्गलकम्मं एसो तस्स विवागोदयो हवदि। ण दु एस मज्झ भावो जाणगभावो दु अहमिक्को।*

अर्थ - क्रोध पुद्गल कर्म है, यह (क्रोध) उस (पुद्गल कर्म) का उदय और विपाक है। यह मेरा भाव नहीं है, मैं तो एक ज्ञायक भाव हूँ।

कह एस तुज्झ ण हवदि विविहो कम्मोदओफलविवागो।
परदव्वाणुवओगो ण हु देहो होदि अण्णाणी॥२१२॥

अन्वय - *एस विविहो कम्मोदओफलविवागो देहो तुज्झ कह ण हवदि। परदव्वाणुवओगो दु अण्णाणी ण होदि।*

अर्थ - यह विविध कर्मोदय फल विपाकज शरीर तेरा कैसे नहीं है? परद्रव्य में उपयोग नहीं करने वाला जीव अज्ञानी नहीं होता है, अपितु ज्ञानी होता है।

एवं सम्मादिट्ठि अप्पाणं मुणदि जाणग सहावं।
उदयं कम्मविवागं च मुअदि तच्चं वियाणंतो॥२१३॥

अन्वय - *एवं सम्मादिट्ठि अप्पाणं जाणग सहावं मुणदि तच्चं य वियाणंतो उदयं कम्मविवागं मुअदि।*

अर्थ - इस प्रकार सम्यग्दृष्टि अपने ज्ञायक स्वभाव का मनन करता है और तत्व को विशिष्टता से जानता हुआ कर्म के उदय एवं विपाक को त्यागता है।

टिप्पणी :-

ण बलाउसाहणट्ठं ण सरीरस्स य चयट्ठतेजट्ठं।
णाणट्ठं संजमट्ठं झाणट्ठं चेव भुंजंति॥ मूलाचार-४८१
अक्खामक्खणिमितं इसिणो भुंजति णाणधारणणिमित्तं।
पाणा धम्मणिमित्तं धम्मं हि धरंतिमोक्खट्टं॥ मूलाचार-४८२

उदय विवागो विविहो कम्माणं वण्णिओ जिणवरेहिं।
ण हु ते मज्झ सहावा जाणग भावो हु अहमिक्को॥२१४॥

अन्वय - *जिणवरेहिं कम्माणं विविहो उदयविवागो वण्णिओ ण हु ते मज्झ सहावा जाणगभावो हु अहमिक्को।*

अर्थ - जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कर्मों के विविध प्रकार के उदय और विपाक वर्णित किए गए हैं। वे तो मेरे स्वभाव नहीं हैं, मैं तो अकेला ज्ञायक स्वभाव हूँ।

परमाणुमित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
णवि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरोवि॥२१५॥

अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठि जीवाजीवे अयाणंतो॥२१६॥

अन्वय - *जस्स रागादीणं परमाणुमित्तयं पि हु विज्जदे सव्वागमधरोवि सो अप्पाणयं णवि जाणदि। अप्पाणं अयाणंतो अणप्पयं अयाणंतो जीवाजीवे चावि अयाणंतो सो कह सम्मदिट्ठि होदि।*

अर्थ - जिसके रागादि (राग, दोष, मोह) परमाणु मात्र भी विद्यमान है वह समस्त आगमों का धारी होने पर भी आत्मा को नहीं जानता है और आत्मा को नहीं जानने वाला, अनात्मा को नहीं जानने वाला और जीव/अजीव को भी नहीं जानने वाला सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है? (अर्थात् नहीं हो सकता)।

जो वेददि वेदिज्जदि समये समये विणस्सदे उहयं।
तं जाणगो तु णाणी उहयमवि ण कंखदि कदावि॥२१७॥

अन्वय - *णाणी जो वेददि वेदिज्जदि समये समये उहयं विणस्सदे जाणगो तु तं उहयमवि कदावि ण कंखदि।*

अर्थ - ज्ञानी जिसे वेदन करता है (भोगता है) और वेदन करेगा (भोगेगा)। वह दोनों ही समय समय पर नाश को प्राप्त होते हैं। उसको जानने वाला तो कभी भी उन दोनों की आकांक्षा नहीं करता है (नहीं चाहता है)

बंधुवभोगणिमितं अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स।
संसारदेहविसएसु णेव उप्पज्जदे रागो॥२१८॥

अन्वय - *णाणिस्स अज्झवसाणोदएसु बंधुवभोग णिमितं संसार देह विसयेसु रागो णेव उपज्जदे।*

अर्थ - ज्ञानी के अध्यवसान के उदय में बंध के उपभोग के निमित्त संसार, देह के विषयों में राग उत्पन्न नहीं होता है।

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ॥२१९॥

अन्वय - *जदि मज्झं परिग्गहो तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज। जम्हा अहं णादा एव तम्हा मज्झं परिग्गहो ण।*

अर्थ - यदि परिग्रह मेरा है तो मैं अजीवत्व को प्राप्त हो जाऊँ। जिस कारण से मैं ज्ञाता हूँ उस कारण से परिग्रह मेरा नहीं है।

आदह्मि दव्वभावे अथिरे मोत्तूण गिण्ह तह णियदं।
थिरमेगमिमं भावं उवलब्भंतं सहावेण॥२२०॥

अन्वय - *तह अथिरे दव्वभावे मोत्तूण आदह्मि सहावेण उवलब्भंतं णियदं थिरमेगमिमं भावं गिण्ह।*

अर्थ - अतः अस्थिर द्रव्य और भाव कर्मों को छोड़कर आत्मा में स्वभाव से प्राप्त नियत इस एक स्थिर भाव को ग्रहण कर।

को णाम भणिज्ज वुहो परदव्वं मम इदं हवदि दव्वं।
अप्पाणमप्पणो परिगहं तु णियदं वियाणंतो॥२२१॥

अन्वय - *अप्पणो अप्पाणं णियदं दव्वं वियाणंतो को णाम वुहो इदं परदव्वं परिगहं मम हवदि भणिज्ज।*

अर्थ - अपनी आत्मा को नियत द्रव्य जानता हुआ कौन बुद्धिमान इस परद्रव्य परिग्रह को मेरा है-ऐसा कहेगा?

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं।
जह्मा तह्मा गच्छदु तहावि ण परिग्गहो मज्झं॥२२२॥

अन्वय - *छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव विप्पलयं जादु जह्मा तह्मा गच्छदु तहा वि मज्झ परिग्गहो ण।*

अर्थ - परिग्रह क्षीण हो जाय, भिन्न हो जाय, निर्जरित हो जाय अथवा विप्लव को प्राप्त हो जाय, यद्वा तद्वा हो जाय तब भी परिग्रह मेरा नहीं है।

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होह णिच्चमेदह्मि।
एदेण होदि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं॥२२३॥

अन्वय - *एदह्मि णिच्चं रदो णिच्चमेदह्मि संतुट्ठो होह एदेण तित्तो होदि तुह उत्तमं सोक्खं होहदि।*

अर्थ - इस (आत्मा) में नित्य रत (लीन) और उसमें नित्य सन्तुष्ट हो, इससे ही तृप्त हो, इससे तुझे उत्तम (निरापद) सुख प्राप्त होगा।

आभिणि सुदोहिमणकेवलं च तं होदि एक्कमेव पदं।
जं णिव्वुदिं लहिदुं सो एसो परमट्ठो लहदि॥२२४॥

अन्वय - *आभिणिसुदोहिमणकेवलं च तं एक्कमेव पदं होदि। सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं लहदि।*

अर्थ - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये एक ही पद (सम्यग्ज्ञानरूप) होते हैं, वह परमार्थ है जिसे प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त करता है।

णाण गुणेहिं विहीणा एदं दु पदं बहूवि ण लभंते।
तं गिण्ह सुपदमेदं जइ इच्छहि कम्मपरिमोक्खं॥२२५॥

अन्वय - *णाण गुणेहिं विहीणा बहूवि एदं दु पदं ण लहंति। जइ कम्मपरिमोक्खं इच्छहि तं एदं सुपदं गिण्ह।*

अर्थ - सम्यग्ज्ञान गुण से विहीन (रहित) बहुत से (पुरुष) इस पद (परमट्ठ-परमार्थ) को प्राप्त नहीं करते हैं। यदि कर्म से मुक्ति चाहते हो तो इस सुपद को ग्रहण करो।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी हि णेच्छदे धम्मं।
अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि॥२२६॥

अन्वय - *अपरिग्गहो णाणी अणिच्छो भणिदो धम्मं हि णेच्छदे तेण दु सो अपरिग्गहो धम्मस्स जाणगो होदि।*

अर्थ - अपरिग्रही ज्ञानी को इच्छा रहित कहा गया है और वह धर्म द्रव्य की इच्छा नहीं करता है। इससे वह अपरिग्रही धर्म का ज्ञाता होता है।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णेच्छदि अधम्मं।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि॥२२७॥

अन्वय - *अपरिग्गहो णाणी अणिच्छो भणिदो अधम्मं य णेच्छदि तेण सो अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो होदि।*

अर्थ - अपरिग्रही ज्ञानी को इच्छा रहित कहा गया है और वह अधर्म द्रव्य को नहीं चाहता है। इससे वह अपरिग्रही अधर्म द्रव्य का ज्ञाता होता है।

धम्माच्थि अधम्मच्थी आयासं सुत्तमंगपुव्वेसु।
संगं च तहा णेयं दुयमणुअ त्तिरिय णेरइयं॥ २२८॥

अन्वय - *सुत्तमंगपुव्वेसु धम्मच्थि अधम्मच्थी आयासं तहा दुय मणुअ तिरिय णेरइयं च संग णेयं।*

अर्थ - श्रुत और अंग पूर्व में (उपदेशित) धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश तथा देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नरक को संग (परिग्रह) जानना चाहिये।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो असणं च णेच्छदे णाणी।
अपरिग्गहो दु असणस्स जाणसो तेण सो होदि॥ २२९॥

अन्वय - *अपरिग्गहो णाणी अणिच्छो भणिदो असणं च णेच्छदे तेण अपरिग्गहो सो असणस्स जाणगो होदि।*

अर्थ - अपरिग्रही ज्ञानी को इच्छा रहित कहा गया है और अशन (भोजन) की इच्छा नहीं करता है। इससे वह अपरिग्रही असन का ज्ञाता होता है।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो पाणं च णिच्छदे णाणी।
अपरिग्गहो दु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि॥२३०॥

अन्वय - *अपरिग्गहो णाणी अणिच्छो भणिदो पाणं च णिच्छदे। तेण सो अपरिगाही पाणस्स जाणगो होदि।*

अर्थ - अपरिग्रही ज्ञानी को इच्छा रहित कहा गया है और वह पान (पेय) की इच्छा नहीं करता है। उससे वह अपरिग्रही ज्ञानी पेय का ज्ञायक होता है।

इच्चादिए दु विविहे सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी।
जाणग भावो णियदो णीरालंबो य सव्वत्थं॥२३१॥

अन्वय - *णाणी इच्चादिए दु विविहे सव्वे भावे णिच्छदे। सव्वत्थं णियदो णिरालम्बो जाणग भावो च।*

अर्थ - ज्ञानी (उपर्युक्त) इत्यादि विभिन्न प्रकार के समस्त भावों की इच्छा नहीं करता है और सर्वत्र नियत निरालम्ब और ज्ञायक भाव वाला है।

उप्पण्णोदय भोगे वियोगबुद्धिय तस्स सो णिच्चं।
कंखामणागदस्स य उदयस्स ण कुव्वदे णाणी॥२३२॥

अन्वय - *तस्स उप्पण्णोदय भोगे णिच्चं वियोगबुद्धिय सो णाणी अणागदस्स य उदयस्स कंखां ण कुव्वदे।*

अर्थ - उसकी उदय से उत्पन्न भोग में नित्य वियोग बुद्धि होने से वह ज्ञानी अनागत और उदय की आकांक्षा नहीं करता है।

णाणी रागप्पजहो हि सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
णो लिप्पदि कम्मरजएण दु कद्दममज्झे जहा कणयं॥२३३॥

अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दम मज्झे जहा लोहं॥२३५॥

अन्वय - *हि सव्वदव्वेषु रागप्पजहो कम्ममज्झगदो णाणी कम्मरजएण ण लिप्पदि दु जहा कद्दममज्झे कणय।*

पुण सव्वदव्वेषु रत्तो कम्ममज्झगदो अण्णाणी कम्मरएण लिप्पदि दु जहा कद्दम मज्झे लोह।

अर्थ - वस्तुत: सर्व द्रव्यों में राग को त्याग करने वाला कर्म के मध्य में गया हुआ ज्ञानी कर्मरज से लेपित (आच्छादित) नहीं होता है, जैसे कीचड़ के मध्य में सुवर्ण (लेपित नहीं होता है)।

और सर्व द्रव्यों में रत कर्म के मध्य में गया हुआ अज्ञानी कर्मरज से लेपित (आच्छादित) होता है, जैसे कीचड़ के मध्य में लोहा (लेपित होता है)।

णागफणीए मूलं णाइणितोएण गब्भागेण।
णागं होदि सुवण्णं धम्मंतं भत्थवाएण॥२३५॥

कम्मं हवेई किट्टं रागादी कालिया भावा।
सम्मतणाणचरणं परमोसहमिदि वियाणाहि॥२३६॥

झाणं हवेई अग्गी तवयरणं भत्तली समक्खादो।
जीवो हवेइ लोहं धमिदव्वो परमजोगीहि॥२३७॥

अन्वय - *कम्मं किट्टं रागादि भावा कालिया हवेई। सम्मतणाणचरणं परमोसह इदि वियाणाहि। झाणं हवेई अग्गी तवयरणं भत्तली समक्खादो जीवो लोहं हवेई परम जोगी हि धमि दव्वो।*

अर्थ - कर्मकीट और रागादि भाव काला (अशुद्ध) करने वाले होते हैं। सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र इनकी परम औषधि जानो। ध्यान अग्नि है, तप चारित्र धौंकनी कहा गया है, जीव को लोहा कहा गया है, परम योगियों के द्वारा उसे धौंकना चाहिये।

भुंजंतस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिये दव्वे।
संखस्स सेदभावो णवि सक्कदि किण्णगो कादुं॥२३८॥

तह णाणिस्स वि विविहे सच्चिताचित्तमिस्सिये दव्वे।
भुंजंतस्सवि णाणं णवि सक्कमण्णाणदं णेदुं॥२३९॥

जइया सयमेवादा णाणसहावत्थयं पजहिदूण।
गच्छेज्ज रागभावं तइया अण्णाणदं गच्छे॥२४०॥

जह संखो पोग्गलदो जइया सुक्कत्तणं पजहिदूण।
गच्छेज्ज किण्हभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे॥२४१॥

तह णाणी वि हु जइया णाण सहावं सयं पजहिदूण।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे॥२४२॥

अन्वय - *सच्चित्ताचित्तमिस्सिये विविहे दव्वे भुंजंतस्सवि संखस्स सेदभावो किण्णगो कादुं णवि सक्कदि। तह सच्चिताचित्तमिस्सिये विविहे दव्वे भुंजंतस्स णाणिस्स वि णाणं अण्णाणदं णेदुं णवि सक्क। जइया सयं एव आदा णाण सहावत्थयं पजहिदूण रागभावं गच्छेज्ज तइया अण्णाणदं गच्छे। जह जइया संखो पोग्गलदो सुक्कत्तणं पजहिदूण किण्हभावं गच्छेज्ज तइया सुक्कत्तणं पजहे। तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं सयं पजहिदूण अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे।*

अर्थ - (जैसे) सचित्त, अचित्त, मिश्र विविध द्रव्यों को भक्षण करते (भोगते) हुए शंख का श्वेतभाव कृष्ण करने में समर्थ नहीं है। उसी प्रकार सचित्त, अचित्त, मिश्र विविध द्रव्यों को भोगते हुए ज्ञानी का ज्ञान भी अज्ञानत्व को प्राप्त होने में समर्थ नहीं है।

जब जीव स्वयं ही ज्ञान स्वभाव को छोड़कर रागभाव को प्राप्त होता है तब वह अज्ञान को प्राप्त करता है।

जब वही शंख स्वयं पुद्गल के श्वेतभाव को छोड़कर कृष्णभाव को प्राप्त होता है तब (वह) शुक्लत्त्व को छोड़ता है।

वैसे ही ज्ञानी भी जब स्वकीय ज्ञान स्वभाव को छोड़कर अज्ञान से परिणत होता है तब (वह) अज्ञानता को प्राप्त होता है।

पुरिसो जह कोवि इहं वित्तणिमित्तं तु सेवदे रायं।
तो सो वि देदि राया विविहे भोगे सुहुप्पादे॥२४३॥

एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं।
तो सोवि देदि कम्मो विविहे भोगे सुहुप्पादे॥२४४॥

जह पुण सो चिय पुरिसो वित्तणिमित्तं ण सेवदे रायं।
तो सो ण दे दि राया विविह सुहुप्पादे भोगे॥२४५॥

एमेव सुद्धदिट्ठि विसयत्थं सेवदे ण कम्मरयं।
तो सो ण दे दि कम्मं विविहे सुहुप्पादगेभोगे॥२४६॥

अन्वय - *जह इह कोवि पुरिसो वित्तणिमित्तं तु रायं सेवदे तो सो राया विविहे सुहुप्पादे भोगे दे दि। एमेव जीवपुरिसो सुहणिमित्तं कम्मरयं सेवदे। तो सो वि कम्मो सुहुप्पादे भोगे दे दि। जह पुण सो चिय पुरिषो वित्तणिमित्तं रायं ण सेवदे तो सो राया विविह सुहप्पादे भोगे ण देदि। एमेव सुद्धदिट्ठि विसयत्थं कम्मरयं ण सेवदे तो सो कम्मं विविहे सुहुप्पादे भोगे ण देदि।*

अर्थ - जैसे इस लोक में कोई भी पुरुष वृत्ति (आजीविका) के निमित्त राजा की सेवा करता है तब वह राजा भी (उसे) विविध सुख उत्पन्न करने वाले भोगों को देता है। इसी प्रकार जीव पुरुष सुख के निमित्त कर्मरज की सेवा करता है तो वह कर्मरज भी सुख उत्पन्न करने वाले (विविध) भोगों को देता है। जैसे वही पुरुष राजा की वृत्ति निमित्त सेवा नहीं करता है तो वही राजा सुख के उत्पादक विविध भोगों को नहीं देता है। इसी प्रकार शुद्ध (सम्यग्) दृष्टि विषयार्थ कर्मरज की सेवा नहीं करता है तो वह कर्म भी सुख उत्पन्न करने वाले विविध भोगों को नहीं देता है।

सम्मादिट्ठि जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण।
सत्तभयविप्पमुक्का जह्मा तह्मा दु णिस्संका॥२४७॥

अन्वय - *सम्मादिट्ठि जीवा णिब्भया तेण णिस्संका होंति जह्मा सत्तभयविप्पमुक्का तह्मा णिस्संका।*

अर्थ - सम्यग्दृष्टि जीव निर्भय होते हैं और उस निर्भयता से वे नि:शंक होते हैं। जिस कारण वे सप्तभय विप्रमुक्त हैं उसी कारण वे नि:शंक हैं (यदि सप्तभय मुक्त नहीं होते तो वे नि:शंक नहीं होते)।

जो चत्तारि वि पाए छिददि ते कम्मबंध मोहकरे।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो॥२४८॥

अन्वय - *जो मोहकरे कम्मबंध ते चत्तारि वि पाए छिददि सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।*

अर्थ - जो जीव मोहनीय कर्म (सम्यग्दर्शन में) बंध करने वाले उन चारों ही (अनन्तानुबंधी आदि) पायों को छेदता है उसे निःशंक चेतयिता सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तहय सव्वधम्मेसु।
सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो॥२४९॥

अन्वय - *जो चेदा कम्मफलेसु तहय सव्वधम्मेसु कंखं ण करेदि सो णिक्कंखो सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो।*

अर्थ - जो जीव कर्म फल तथा समस्त कर्म सम्बन्धी स्वभावों में आकांक्षा नहीं करता है उसे निःकांक्ष सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो ण करेदि दुगुंच्छं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।
सो खलु णिव्विदिगिंछो सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो ॥२५०॥

अन्वय - *जो चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं दु गुंच्छं ण करेदि सो खलु णिव्विदिगिंछो सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो।*

अर्थ - जो जीव समस्त वस्तु स्वभावों में जुगुप्सा (ग्लानि) नहीं करता है उसे निर्विचिकित्सित सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो कुणदि असम्मोहं सम्माइट्ठि णयेसु विविहेसु।
सो खलु अमूढ़दिट्ठि सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो ॥२५१॥

जो हवदि असम्मूढ़ो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु।
सो खलु अमूढ़दिट्ठि सम्मादिट्ठि मुणेदव्वो ॥२५२॥

अन्वय - *जो सम्मादिट्ठि विविहेसु णयेसु असम्मोहं कुणदि सो खलु अमूढ़दिट्ठि सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो। जो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु असम्मूढ़ो हवदि सो खलु अमूढ़दिट्ठि सम्मादिट्ठि मुणेदव्वो।*

अर्थ - जो सम्यग्दृष्टि विविध नयों में असम्मोह करता है उसे वस्तुतः अमूढ़ दृष्टि सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए। जो जीव समस्त कर्म भावों (ज्ञानावरणादि) में सम्मूढ़ (मोहित) नहीं होता है उसे अमूढ़दृष्टि सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

जो सिद्धभत्ति जुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।
सो उवगूहण गारी सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो॥२५३॥

अन्वय - *जो सिद्धभत्ति जुत्तो सव्वधम्माणं दु उवगूहणगो सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो।*

अर्थ - जो सिद्ध भक्ति से युक्त समस्त धर्मों का परिमार्जन करने वाला है उसे उपगूहन करने वाला सम्यग्दृष्टि जानना चाहिये।

नोट-उपगूहनं अप्पाणं रक्खणं दोषाणं परिमार्जनं च।

उम्मग्गं गच्छंतं सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाणं।
सो ठिदिकरणे जुदो सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो॥२५४॥

अन्वय - *उम्मंग्गं गच्छंतं जो अप्पाणं सिवमग्गे ठवेदि सो ठिदिकरणे जुदो सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो।*

अर्थ - उन्मार्ग में जाता हुआ जो जीव अपने को शिव (मोक्ष) मार्ग में स्थापित करता है उसे स्थितिकरण से युक्त सम्यग्दृष्टि समझना चाहिये।

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हं साहूण मोक्खमग्गम्मि।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो॥२५५॥

अन्वय - *जो मोक्खमग्गम्मि तिण्हं साहूण वच्छलत्तं कुणदि सो सम्मादिट्ठि वच्छलभावजुदो मुणेयव्वो।*

अर्थ - जो मोक्षमार्ग (रत्नत्रय) में तीनों साधुओं में वत्सलता करता है उस सम्यग्दृष्टि को वात्सल्यभाव युक्त समझना चाहिये।

विज्जारहमारुढो मणोरहरएसु हणदि जो चेदा।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो॥२५६॥

अन्वय - *विज्जारहमारुढो जो चेदा मणोरहरएसु हणदि जिणणाणपहावी सो सम्मादिट्ठि मुणेयव्वो।*

अर्थ - विद्या (सम्यग्ज्ञान) रूपी रथ में आरुढ़ जो जीव मनोरथ (मन रूपी रथ) के वेगों (चित्त की चंचलता-चित्त कल्लोल) को दूर करता है उसे जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट ज्ञान (समय) का प्रभावक सम्यग्दृष्टि समझना चाहिये।

●●

टिप्पणी :-

एगं जिणस्स रुवं बीयं उक्किट्ठसावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंग दंसणं णत्थि॥

-दंसणपाहुड १८

बंधाधिकार

जह णाम कोवि पुरिसो णेहभत्तो दु रेणुबहुलम्मि।
ठाणम्मि ठाइदूण य करेदि सत्थेहिं वायामं ॥२५७॥

छिंददि भिंददि य तहा तालीतल कयलि बंसपिडिओ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवहादं ॥२५८॥

उवघादं कुव्वंतस्य तस्स णाणाविहेहि करणेहि।
णिच्छयदो चिंतेज्ज किं पच्चयगो दु रयबन्धो ॥२५९॥

जो सो णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबन्धो।
णिच्छयदो विण्णेयो ण काय चेट्ठाहि सेसाहिं ॥२६०॥

एवं मिच्छादिट्ठि वट्टन्तो बहुविहाण चट्ठासु।
रायादी उवओगे कुव्वंतो लिप्पदि रयेण ॥२६१॥

अन्वय - *जह णाम णेहभत्तो कोवि पुरिसो दु रेणुबहुलम्मि ठाणम्मि ठाइदूण सत्थेहिं वायामं करेदि तहा तालीतल कयलि बंसपिडिओ छिंददि भिंददि य सचित्ताचित्ताणं य दव्वाणमुवहादं करेदि। णाणाविहेहि करणेहिं उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णिच्छयदो रयबंधो किं पच्चयगो चिंतिज्ज। तह्मि णरे जो णेहभावो दु तेण तस्स सो रयबंधो णिच्छयदो*

सेसाहिं कायचेट्ठाहिं ण विण्णेय। एवं बहुविहाण चेट्ठासु वट्टन्तो मिच्छादिट्ठि उवओगे रायादि कुव्वंतो रयेण लिप्पदि।

अर्थ - जैसे सचिक्कण कोई पुरुष बहुल धूलियुक्त स्थान में स्थित होकर शस्त्रों से व्यायाम करता है तथा ताड़वृक्ष, केला तथा बांस की पिंडियों को छेदता है, भेदता है और सचित्त एवं अचित्त द्रव्यों का उपघात करता है। अनेक प्रकार के साधनों से उपघात करते हुए उसके कौन सा प्रत्यय (निमित्त) निश्चय से रजबंध (मलबंध) में कारण है-इसे विचारें।

उस पुरुष में जो चिकनाई (स्नेहभाव) जिससे उस पुरुष के धूलि का बंध है शेष शारीरिक चेष्टाओं से उसके धूलि बंध नहीं होता-निश्चय से ऐसा जानना चाहिये।

इसी प्रकार बहुत प्रकार की चेष्टाओं में वर्तन करता हुआ मिथ्या दृष्टि उपयोग में रागादि करता हुआ कर्मरज से लिप्त (आवरणित) होता है।

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वह्मि अवणिदेत्ते।
रेणु बहुलम्मिठाणे करेदि सत्थेहि वायामं॥२६२॥

छिंददि भिंददि य तहा तालीतल कदलि बंसपिण्डिओ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेदि दव्वाणमुवघादं॥२६३॥

उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं।
णिच्छयदो चिंतेज्ज दु किं पच्चइगो ण रयबंधो॥२६४॥

जो सो दु णेहभावो तह्मि णरे तेण तस्स रयबंधो।
णिच्छयदो विण्णेयो ण कायचेट्ठाहि सेसाहिं॥२६५॥

एवं सम्मादिट्ठि वट्टंतो बहुविहेसु जोगेसु।
अकरंतो उवओगो रागादी णेव बज्झदि रयेण॥२६६॥

अन्वय - *जह पुण सो चेव णरो सव्वह्मि णेहे अवणिदे ते रेणु बहुलम्मि ठाणे सत्थेहिं वायामं करेदि तहा तालीतल कदलि बंसपिण्डिओ छिंददि भिंददि सच्चित्ताचित्ताणं य दव्वाणमुवघादं करेदि। णिच्छयदो उवघादं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिं करणेहिं रयबंधो ण किं पच्चइगो चिंतेज्जदु। तह्मि णरे जो सो दु णेहभावो तेण तस्स रयबंधो णिच्छयदो विण्णेयो न सेसाहिं कायचेट्ठाहि। एवं*

सम्मादिट्ठि बहुविहेसु जोगेसु वट्टंतो उवओगे रागादी अकरंतो रयेण ण बज्झदि।

अर्थ - और वही पुरुष सब प्रकार की चिकनाई के दूर हो जाने पर बहुत धुलि युक्त स्थान में शस्त्रों से व्यायाम करता है तथा ताड़ वृक्ष, केला और बांस की पिण्डी को छेदता है, भेदता है और सचित्त एवं अचित्त द्रव्यों का उपघात करता है। अनेक प्रकार के साधनों से उपघात करते हुए उसका रजो बंध (धूलि का संचय) किस प्रत्यय (कारण) से नहीं हो रहा है यह सोचो। निश्चय से उस पुरुष में जो स्नेह भाव है उससे उसके रजः बंध है, न कि अन्य शारीरिक चेष्टाओं से-ऐसा निश्चय पूर्वक जानना चाहिये। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि बहुत प्रकार के योगों में वर्तन करते हुए भी रागादि उपयोग नहीं करने से वह कर्मबंध से नहीं बंधता है।

जो मण्णदि हिंसामि व हिंसिज्झामि व परेहिं सत्तेहिं।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरिदो॥२६७॥

अन्वय - *जो मण्णदि हिंसामि परेहिं सत्तेहिं व हिंसिज्झामि व सो मूढ़ो अण्णाणी णाणी दु एत्तो विवरिदो।*

अर्थ - जो यह मानता है कि मैं हिंसा करता हूँ और दूसरे जीवों के द्वारा हिंसित होता (मारा जाता) हूँ वह मिथ्या दृष्टि अज्ञानी है। ज्ञानी तो इससे विपरीत होता है।

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आउं ण हरसि तुमं किह ते मरणं कदं तेसिं॥२६८॥

अन्वय - *जीवाणं मरणं आउक्खयेण जिणवरेहि पण्णत्त। तुमं आउं ण हरसि किह तेसिं मरणं ते कद।*

अर्थ - जीवों का मरण आयु कर्म का क्षय होने से होता है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान के द्वारा प्रज्ञप्त है (कहा गया है)। तुम आयु कर्म का हरण नहीं करते तो उनका मरण तुमने कैसे किया?

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
आऊं ण हरंति तुहं किह ते मरणं कदं तेहिं॥२६९॥

अन्वय - *जीवाणं मरणं आउक्खयेण जिणवरेहि पण्णत। ते तुहं आऊं ण हरंति किह तेहिं मरणं कद।*

अर्थ - जीवों का मरण आयु कर्म के क्षय से होता है-ऐसा भगवान जिनेन्द्र देव ने कहा है। वे तुम्हारी आयु कर्म का हरण नहीं करते हैं तो कैसे उनके द्वारा तुम्हारा मरण किया गया?

जो मण्णदि जीवेमि य जिविच्छामि य परेहि सत्तेहि।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो॥२७०॥

अन्वय - *जो मण्णदि परेहि सत्तेहि जीवेमि जिविच्छामि य सो मूढो अण्णाणी णाणी दु एत्तो विवरीदो।*

अर्थ - जो मानता है कि मैं दूसरे जीवों के द्वारा जीता हूँ और जीवित रखा जाता हूँ वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। ज्ञानी तो इससे विपरीत होता है।

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आऊं च ण देसि तुमं कहं तए जिविदं कदं तेसिं॥ २७१ ॥

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू।
आऊं च ण देसि तुमं कहं तए जीविदं कदं तेसिं॥ २७२ ॥

अन्वय - *जीवो आऊदयेण जीवदि एवं सव्वण्हू भणंति तुमं च आऊं ण देसि कहं तए तेसिं जिविदं कदं?*

जीवो आऊदयेण जीवदि एवं सव्वण्हू भणंति। तुमं च आऊं ण देसि कहं तए तेसिं जिविदं कदं?

अर्थ - जीव आयु कर्म के उदय से जीवित रहता (जीता) है-ऐसा सर्वज्ञ देव कहते हैं और तुम आयु कर्म नहीं देते हो तो तुम्हारे द्वारा उन्हें जीवित कैसे किया गया?

जीव आयु कर्म के उदय से जीवित रहता है-ऐसा सर्वज्ञ देव कहते हैं। वे तुझको आयु कर्म नहीं देते तो उनके द्वारा तू कैसे जीवित किया गया?

जो अप्पणादु मण्णादि दु:खिदसुहिदे करेमि सत्तेति।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो॥२७३॥

अन्वय - *जो अप्पणादु मण्णदि सत्तेति दु:खिदसुहिदे करेमि स मूढो अण्णाणी णाणी दु एत्तो विवरीदो।*

अर्थ - जो (जीव) अपने को ऐसा मानता है कि मैं जीवों को दु:खी और सुखी करता हूँ वह मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी है। ज्ञानी तो इससे विपरीत है।

कम्मणिमित्तं सव्वे दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सत्ता।
कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिदसुहिदा कह कदा ते॥२७४॥

कम्मणिमित्तं सव्वे दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सत्ता।
कम्मं च ण देसि तुमं कहं तं सुहिदो कदो तेहिं॥२७५॥

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे।
कम्मं च ण देसि तुमं दुक्खिद सुहिदा किह कदा ते॥२७६॥

अन्वय - *जदि सव्वे सत्ता कम्मणिमित्तं दुखिदसुहिदा हवंति तुमं च कम्मं ण देसि कह ते दुखिदसुहिदा कदा?*

जदि सव्वे सत्ता कम्मणिमित्तं दुखिदसुहिदा हवंति तुमं च कम्मं ण देसि तं कहं तेहिं सुहिदो कदो?

जदि सव्वे जीवा कम्मोदयेण दुखिदसुहिदा हवंति तुमं च कम्मं ण देसि ते किह दुक्खिद सुहिदा कदा?

अर्थ - यदि समस्त जीव कर्म निमित्त से दु:खी-सुखी होते हैं तो तुम उनको कर्म नहीं देते हो तो वे तुम्हारे द्वारा दुखी-सुखी कैसे किये गये?

यदि समस्त जीव कर्म निमित्त से दु:खी-सुखी होते हैं और तुम उनको कर्म नहीं देते हो तो तुम उनके द्वारा सुखी कैसे किये गये?

यदि सारे जीव कर्मोदय से दु:खी-सुखी होते हैं और तुम उनको कर्म नहीं देते हो तो वे तुम्हारे द्वारा दु:खी-सुखी कैसे किये गये?

जो मरदि जो य दुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो।
तह्मा दु मारिदो दे दुहाविदो चेव णहु मिच्छा॥२७७॥

जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि कम्मोदयेण खलु जीवो।
तह्मा ण मारिदो ण दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा॥२७८॥

अन्वय - *जो मरदि जो य दुहिदो सो सव्वो कम्मोदयेण जायदि। तह्मा दु मारिदो दे दुहाविदो चेव णहु मिच्छा।*

जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि जीवो कम्मोदयेण खलु। तह्मा ण मारिदो ण दुहाविदो चेदि णहु मिच्छा।

अर्थ - जो मरता है और जो दुखी होता है वह सब कर्म के उदय से होता है। इससे वे (अन्य के द्वारा) मारे गये और दुखी किये गये, क्या यह वस्तुतः मिथ्या नहीं है?

जो मरता नहीं है और दु:खी नहीं होता है वह भी नियम से कर्म के उदय से है। इससे वे (अन्य के द्वारा) नहीं मारे गए और दु:खी नहीं किए गए-यह वस्तुतः मिथ्या नहीं है।

एसा दु जा मदी दे दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेति।
एसा दे मूढमदी सुहासुहं बंधदे कम्मं॥२७९॥

अन्वय - *सत्ते दुक्खिदसुहिदे करेमि इति एसा दु जा दे मदि। एसा दे मूढमदी सुहासुहं कम्मं बंधदे।*

अर्थ - (मैं) जीवों को दुखी-सुखी करता हूँ ऐसी जो तेरी मति (बुद्धि) है यह तेरी मूढ़ (मोहित) मति शुभ-अशुभ कर्म को बांधती है।

दुखिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एवमज्झवसिदं ते।
तं पावबंधगं वा पुण्णस्स य बंधगं होदि॥२८०॥

मारेमि जीववेमि य सत्ते जं एद मज्झवसिदं ते।
तं पाव बंधगं वा पुण्णस्स य बंधगं होदि॥२८१॥

अन्वय - *सत्ते दुखिदसुहिदे करेमि एवं ते जं अज्झवसिदं तं पाव बंधगं वा पुण्णस्स च बंधगं होदि।*

सत्ते मारेमि जीववेमि य एद ते जं अज्झवसिदं तं पावबंधगं वा पुण्णस्स य बंधगं होदि।

अर्थ - (मैं) जीवों को दुखी-सुखी करता हूँ-यह तेरा जो अध्यवसित है वह पाप का बंधक अथवा पुण्य का बंधक होता है।

(मैं) जीवों को मारता हूँ-जीवित रखता हूँ यह तेरा जो अध्यवसित है वह पाप का बंधक अथवा पुण्य का बंधक होता है।

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिद सुहिदा हंवति जदि सव्वे।
कम्मं च ण दिंति तुमं कदोसि किह दुक्खिदो ते हिं॥२८२॥

कम्मोदयेण जीवा दुक्खिद सुहिदा हंवति जदि सव्वे।
कम्मं च ण दिंति तुमं किह तं सुहि कदो तेहिं॥२८३॥

अन्वय - *जदि सव्वे जीवा कम्मोदयेण दुक्खिद सुहिदा हवंति तुमं च कम्मं ण दिंति किह तेहि दुक्खिदो कदोसि?*

जदि सव्वे जीवा कम्मोदयेण दुक्खिद सुहिदा हवंति तुमं च कम्मं ण दिंति तं तेहि किह सुहि कदो।

अर्थ - यदि सभी जीव कर्मोदय से दुःखी और सुखी होते हैं और तुम कर्म नहीं देते हो तो तुम उनसे कैसे दुःखी किए गए?

यदि सारे जीव कर्मोदय से दुःखी व सुखी होते हैं और तुम कर्म नहीं देते हो तो तुम उनसे कैसे सुखी किए गए?

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारे हि मा व मारेहिं।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स॥२८४॥

अन्वय - *सत्ते मारेहिं व मा मारेहिं अज्झवसिदेण बंधो (भवति) जीवाणं एसो बंधसमासो णिच्छयणयस्स।*

अर्थ - जीव को मारे अथवा न मारे, परन्तु अध्यवसित होने से बंध है। जीवों के बंध का यह संक्षेप कथन निश्चय नय से है।

एवमलिए अदत्ते अबंभचेरे पणिग्गहे चेव।
कीरदि अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झदे पावं॥२८५॥

तह सच्चे य अबज्ञी बंहे अपरिग्गहत्तणे चेव।
करिदि अज्झवसाणं जं तेण दु बज्झदे पुण्णं॥२८६॥

अन्वय - *एवं अलिये अदत्ते अबंभचेरे परिग्गहे चेव जं अज्झवसाणं कीरदि तेण दु पावं बज्झदे।*

तह सच्चे अबज्ञी बंहे अपरिग्गहत्तणे चेव जं अज्झवसाणं करिदि तेण दु पुण्णं बज्झदे।

अर्थ - इसी प्रकार असत्य, चोरी, अब्रह्म (कुशील) और परिग्रह में जो अध्यवसान किया जाता है उससे तो पाप बंधता है।

उसी प्रकार सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहत्व में जो अध्यवसान किया जाता है उससे पुण्य का बंध होता है।

वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होदि जीवाणं।
ण हि वत्थुदो दु बंधो अज्झवसाणेण बंधोत्ति॥२८७॥

अन्वय - *वत्थुं पडुच्च जीवाणं जं पुण अध्यवसाणं तु होदि अज्झवसाणेण बंधोत्ति वत्थुदो दु बंधो ण हि।*

अर्थ - वस्तु को अधिकृत करके जीवों का जो अध्यवसान होता है उस अध्यवसान से बंध होता है, वस्तु से बंध नहीं होता है।

दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि बंधामि तह विमोचेमि।
जा एसा तुज्झमदी णिरत्थया सा हु दे मिच्छा॥२८८॥

अन्वय - *जीवे दुक्खिदसुहिदे करेमि बंधेमि तह विमोचेमि जा एसा जा दे णिरत्थया तुज्झमदी सा हु मिच्छा।*

अर्थ - मैं जीवों को दु:खी करता हूँ, सुखी करता हूँ, बांधता हूँ, छोड़ता हूँ तेरी ऐसी जो निरर्थक बुद्धि है वह निश्चय से मिथ्या है।

अज्झवसाणणिमित्तं जीवा बज्झंति कम्मणा जदि हि।
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ते किं करोसि तुमं॥२८९॥

अन्वय - *जदि हि जीवा अज्झवसाणनिमित्तं कम्मणा बज्झंति य मोक्खमग्गे ठिदा ते मुच्चंति तुमं किं करोसि।*

अर्थ - यदि निश्चय ही जीव अध्यवसान के निमित्त कर्म से बंधते हैं और मोक्षमार्ग में स्थित होने से (कर्म से) छूटते हैं तो तू क्या करता है?

कायेण दुक्ख वे मिय सत्ते एवं तु जं मदि कुणसि।
सव्वापि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता॥२९०॥

वाचा ए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि।
सव्वापि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता॥२९१॥

मणसाए दुक्खवेमिय सत्ते एवं तु जं मदिं कुणसि।
सव्वावि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता॥२९२॥

सत्थेण दुक्खावेमिय सत्ते एदं तु जं मदिं कुणसि।
सव्वापि एस मिच्छा दुहिदा कम्मेण जदि सत्ता॥२९३॥

अन्वय - *जदि सत्ता कम्मेण दुहिदा कायेण सत्ते दुक्खवेमिय एवं जं तु मदिं कुणसि एस सव्वापि मिच्छा।*

जदि सत्ता कम्मेण दुहिदा वाचाए सत्ते दुक्खवेमिय एवं तु जं मदिं कुणसि एस सव्वापि मिच्छा।

जदि सत्ता कम्मेण दुहिदा मणसाए सत्ते दुक्खवेमिय एवं तु जं मदिं कुणसि एस सव्वापि मिच्छा।

जदि सत्ता कम्मेण दुहिदा सत्थेण सत्ते दुक्खवेमिय एवं जं मदिं कुणसि एस सव्वापि मिच्छा।

अर्थ - यदि जीव कर्म से दु:खी होते हैं। मैं शरीर से जीवों को दु:खी करता हूँ इस प्रकार तू जो बुद्धि करता है यह सब भी मिथ्या है।

यदि जीव कर्म से दु:खी होते हैं। मैं वचन से जीवों को दु:खी करता हूँ ऐसी तुम जो बुद्धि करते हैं वह सब भी मिथ्या है।

यदि जीव कर्म से दु:खी होते हैं। मैं मन से जीवों को दु:खी करता हूँ ऐसी तू जो बुद्धि करता है वह सब मिथ्या है।

यदि जीव कर्म से दु:खी है। मैं शस्त्र से प्राणियों को दु:खी करता हूँ ऐसी तू जो बुद्धि करता है वह सब भी मिथ्या है।

कायेण व वाचा मणेण व सुहिदा करेमि सत्तेति।
एदंपि हवदि मिच्छा सुहिदा कम्मेण जदि सत्ता॥२९४॥

अन्वय - *सत्तेति कायेण वाचा व मणेण य सुहिदे करेमि एदं पि मिच्छा हवदि। जदि सत्ता कम्मेण सुहिदा।*

अर्थ - मैं प्राणियों को शरीर से, वाणी से और मन से सुखी करता हूँ यह सब मिथ्या है। प्राणी अपने कर्म से सुखी होते हैं।

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण तिरिय णेरइए।
देवमुणवे य सव्वे पुण्णं पावं च अणेय विहं॥२१५॥

अन्वय - *जीवो अज्झवसाणेण तिरिय णेरइए देवमुणवे अणेयविहं य पुण्णं पावं च सव्वे करेदि।*

अर्थ - जीव अध्यवसान से तिर्यंच, नारकी, देव, मनुष्य और अनेक प्रकार के पुण्य और पाप इन सबको करता है।

धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोगलोगं च।
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं॥२१६॥

अन्वय - *तहा जीव अज्झवसाणेण धम्माधम्मं च जीवाजीवे अलोगलोगं च सव्वे अप्पाणं करेदि।*

अर्थ - जीव अध्यवसान से धर्म, अधर्म, जीव, अजीव, अलोक, लोक इन सबको अपना करता (बनाता) है।

एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि।
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणी ण लिप्पंति॥२९७॥

अन्वय - *जेसिं एवमादीणि एदाणि अज्झवसाणाणि णत्थि ते मुणी असुहेण सुहेण व कम्मेण ण लिप्पंति।*

अर्थ - जिसके ये उपर्युक्त इस प्रकार के अध्यवसान नहीं हैं वे मुनि अशुभ और शुभ कर्म से लिप्त नहीं होते हैं।

जो संकप्पवियप्पे ता कम्मं कुणदि असुहसुहजणयं।
अप्पासरुव रिद्धि जाव ण हेयए परिप्फुरइ॥२९८॥

अन्वय - *जाव हेयए अप्पासरुव रिद्धि ण परिप्फुरइ ता संकप्पवियप्पे असुहसुहजणवं कम्मं कुणदि।*

अर्थ - जब तक हृदय में आत्म स्वरूप रिद्धी प्रस्फुटित नहीं होती है, तब तक संकल्प विकल्प में (जीव) अशुभ-शुभ उत्पादक कर्म को करता है।

बुद्धि ववसाओ पि अज्झवसाणं मदी य विण्णाणं।
एकट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो॥२९९॥

अन्वय - *बुद्धि ववसाओ पि अज्झवसाणं मदी विण्णाणं य चित्तं, भावो परिणामो य सव्वं एकट्ठमेव।*

अर्थ - बुद्धि, व्यवसाय, अध्यवसान, मति और विज्ञान, चित्त, भाव एवं परिणाम ये सब एकस्थ हैं।

एवं ववहारणयो पडिसिद्धो जाण णिच्छयणये ण।
णिच्छयणयस्सदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं॥३००॥

अन्वय - *एवं णिच्छयणये व्यवहारणयो ण पडिसिद्धो जाण। पुण णिच्छयणयस्सदा मुणिणो णिव्वाणं पावंति।*

अर्थ - इस प्रकार निश्चय नय में व्यवहार नय का प्रतिषेध नहीं है-ऐसा जानो। निश्चय नय में स्थित मुनि निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

बदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं।
कुव्वंतोवि अभवियो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी य॥३०१॥

अन्वय - *अभवियो जिणवरेहि पण्णत्तं वदसमिदीगुत्तीओ सील तवं कुव्वंतो वि अण्णाणी मिच्छदिट्ठी य।*

अर्थ - अभव्य जीव भगवान जिनेन्द्र देव के द्वारा प्ररूपित व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तपों को करता हुआ भी अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि है।

मोक्खं असद्दहंतो अभविय सत्तो दु जो अधीयंज।
पाठो ण करोदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु॥३०२॥

अन्वय - *मोक्खं असद्दहंतो अभविय सत्तो दु जोअधीयंज असद्दहंतस्स पाठो णाणं तु गुणं ण करोदि।*

अर्थ - मोक्ष का विपरीत श्रद्धान करने वाला अभव्य जीव जो अध्ययन करता है उस विपरीत श्रद्धानी का पाठ ज्ञान गुण नहीं करता है।

सद्दहदि य पत्तियदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि य।
धम्मं भोगणिमित्तं ण हु सो कम्मखयणिमित्तं॥३०३॥

अन्वय - *सो भोगणिमित्तं धम्मं सद्दहदि य पत्तियदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदिय हु कम्मखयणिमित्तं ण।*

अर्थ - वह (अभव्य जीव) भोग के निमित्त धर्म का श्रद्धान करता है और प्रतीति करता है और धर्म की रुचि करता है और फिर अनुष्ठान पूर्वक उसका पालन करता है, वस्तुतः वह (क्रिया) कर्म क्षय के निमित्त नहीं है।

आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं।
छज्जीवाणं रक्खा भणदि चरित्तं तु ववहारो॥३०४॥

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे॥३०५॥

अन्वय - *ववहारो तु जीवादी दंसणं आयारादी णाणं छज्जीवाणं रक्खा य चरित्तं भणदि। मे दंसणे णाणे चरित्ते य खु आदा मे संवरे जोगे आदा पच्चक्खाणे आदा विण्णेय।*

अर्थ - व्यवहारनय जीवादि का श्रद्धान सम्यग् दर्शन, आचारादि अंगों का ज्ञान सम्यग्ज्ञान और षट् काय के जीवों की रक्षा को चारित्र कहता है। वास्तव में मेरे श्रद्धान, ज्ञान और चारित्र में आत्मा, संवर में, योग में और प्रत्याख्यान में आत्मा है-ऐसा जानना चाहिये।

आधाकम्मादीया पोग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
किह ते कुव्वदि णाणी परदव्वगुणा हि जे णिच्चं॥३०६॥

आधाकम्मादीया पोग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा।
कहमणुमण्णदि अण्णेणहि किरमाणि परस्स गुणे॥३०७॥

अन्वय - *पोग्गलदव्वस्स जो इमे आधाकम्मादीया दोसा जे हु णिच्चं परदव्वगुणा ते णाणी किह कुव्वदि। पोग्गलदव्वस्स जे इमे आधाकम्मादीया दोसा परस्स गुणा अण्णेण किरमाणि कहं अणुमण्णदि।*

अर्थ - पुद्गल द्रव्य के अधः कर्मादि जो दोष हैं जो नित्य ही परद्रव्य के गुण हैं उनको ज्ञानी कैसे करता है? और पुद्गल द्रव्य के ये जो अधःकर्मादि दोष अन्य के द्वारा किए गए दूसरे के गुण (तू) कैसे अनुमोदन करता है?

आधाकम्मं उद्देसिं च पुग्गलमयं इमं दव्वे।
किह तह्मा मम होदि कदं जं णिच्चमचेदणं उत्तं॥३०८॥

आधाकम्मं उद्देसियं च पुग्गलमयं इमं सव्वं।
किह तं मम कारविदं जं णिच्चमचेदणं वुत्तं॥३०९॥

अन्वय - *आधाकम्मं उद्देसिं च इमं पुग्गलमयं दव्वं जं णिच्चं अचेदणं उत्तं तह्मा किह म कदं होदि। आधाकम्मं उद्देसियं च इमं पुग्गलमयं दव्वं जं णिच्चं अचेदणं वुत्तं तं किह मम कारविद।*

अर्थ - अध: कर्म औद्देशिक यह पुद्गगल मय द्रव्य जो नित्य अचेतन कहा गया है वह मेरा किया हुआ कैसे होता है? अध: कर्म और उद्देशित यह पुद्गलमय द्रव्य जो नित्य अचेतन कहा गया है वह कैसे मेरे द्वारा कराया गया?

जह फलिहमणी विसुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं।
राइज्जदि अण्णेहिं दु सो रत्तादीहि दव्वेहि॥३१०॥

एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमदि रागमादीहिं।
रागीज्जदि अण्णेहि दु सो रागादीहि दोसेहिं॥३११॥

अन्वय - *जह विसुद्धो फलिहमणी रागमादीहिं ण सयं परिणमइ सो दु अण्णेहिं रत्तादीहिं दव्वेहिं राइज्जदि। एवं सुद्धो णाणी रागमादीहिं सयं ण परिणमदि सो दु अण्णेहिं रागादिहि दोसेहिं रागीज्जदि।*

अर्थ - जिस प्रकार शुद्ध स्फटिक मणि लालिमा आदि रूप नहीं परिणमता है, वह तो अन्य रक्त आदि द्रव्यों से रंजित होता है। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी रागादि रूप स्वयं वह परिणमन नहीं करता है, वह तो अन्य रागादि (कर्मजन्य) दोषों से रंजित होता है।

णवि रायदोसमोहे कुव्वदि णाणी कसायभावं वा।
सयमप्पणो ण सो तेण कारगो तेसिं भावाणं॥३१२॥

अन्वय - *णाणी रायदोसमोहे कसायभावं वा णवि कुव्वदि तेण सो सयं अप्पणो भावाणं कारगो तेसिं (भावाणं कारगो) ण।*

अर्थ - ज्ञानी राग, दोष, मोह अथवा कषाय भाव को नहीं करता है। वह स्वयं अपने भावों का कर्त्ता है, इसलिए वह उन (उपर्युक्त भावों का कर्त्ता) नहीं है।

रागम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
तेहिं दु परिणममाणो रागादी बज्झदि पुणो वि॥३१३॥

अन्वय - *रागम्हि दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा तेहिं परिणममाणो दु पुणो वि रागादी बज्झदि।*

अर्थ - राग, दोष और कषाय कर्मों में जो भाव हैं उनसे परिणमन करता हुआ (जीव) पुनरपि रागादि को बांधता है।

रायम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा।
ते मम दु परिणमंतो रागादी बंधदे चेदा॥३१४॥

अन्वय - *रायह्मि य दोसह्मि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ते दु मम परिणमंतो चेदा रागादी बंधदे।*

अर्थ - राग, दोष और कसाय कर्मों में जो भाव हैं वे मेरे हैं, ऐसा परिणमन करता हुआ जीव रागादि को बांधता है।

अप्पडिकमणं दुविहं अप्पच्चक्खाणं तहेव विण्णेयं।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा॥३१५॥

अप्पडिकमणं दुविहं दव्वे भावे तहा अपच्चक्खाणं पि।
एदेणुवदेसेण दु अकारगो वण्णिदो चेदा॥३१६॥

जाव अप्पपच्चक्खाणं अप्पडिक्कमणं च दव्वभावाणं।
कुव्वदि आदा तावदु कत्ता सो होदि णादव्वो॥३१७॥

अन्वय - *अप्पडिकमणं तहेव अप्पच्चक्खाणं दुविहं विण्णेय। एदेणुवदेसेण दु चेदा अकारगो वण्णिदो। अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे भावे तहा अपच्चक्खाणं पि। एदेणुवदेसेण दु चेदा अकारगो वण्णिदो। जाव आदा दव्व भावाणं च अप्पच्चक्खाणं ण कुव्वदि तावदु सो अपडिक्कमणं कत्ता होदि णादव्वो।*

अर्थ - अप्रतिक्रमण तथा अप्रत्यख्यान दो प्रकार का जानना चाहिये। इस आगमोपदेश से जीव को अकारक (अकर्त्ता) कहा गया है। अप्रतिक्रमण द्रव्य और भाव से दो प्रकार का है, उसी प्रकार अप्रत्याख्यान भी दो प्रकार का है। इस आगमोपदेश से चेतयिता (जीव) को अकारक कहा गया है। जब तक जीव द्रव्य भाव रुप अप्रतिक्रमण और अप्रत्यख्यान को करता है तब तक वह कर्त्ता होता है-ऐसा जानना चाहिये।

मोक्खाधिकार

जह णाम कोवि पुरिसो बंधणियह्मि चिरकाल पडिबद्धो।
तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणदे तस्स॥३१८॥

जई णवि कुव्वदि छेदं ण मुंचदे तेण कम्मबंधणेण सो।
कालेण दु बहुगेण वि ण सो णरो पावदि विमोक्खं॥३१९॥

इहि कम्मबंधणाणं पदेसपयडिट्ठिदिय अणुभागं।
जाणंतो वि ण मुच्चदि मुच्चदि सव्वे जदि विसुद्धो॥३२०॥

अन्वय - *जह णाम चिरकाल बंधणियह्मि पडिबद्धो को वि पुरिसो तस्स तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणदे। जई छेदं ण कुव्वदि तेण कम्मबंधणेण णवि मुंचदि बहुगेण कालेण सो णरो विमोक्खं ण पावदि। इदि सव्वे पदेसपयडिट्ठिदिय कम्मबंधणाणं अणुभागं जाणंतो वि ण मुच्चदि जदि विसुद्धो मुच्चदि।*

अर्थ - जैसे चिरकाल से बंधन में बंधा हुआ कोई पुरुष उस बंधन के तीव्र मन्द स्वभाव और काल को विशेष जानता है। यदि उसका छेद नहीं करता है तो उस (बंधन) से नहीं छूटता है वह बहुत काल पर्यंत भी मोक्ष को प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार सब प्रकृति प्रदेश स्थिति

अनुभाग रूप कर्म के बंधनों को जानता हुआ भी नहीं त्यागता है। यदि विशुद्ध है तो त्यागता है।

जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावदि विमोक्खं।
तह बंधे चिंतंतो जीवोवि ण पावदि विमोक्खं॥३२१॥

अन्वय - *जह बंधणबद्धो बंधे चिंतंतो विमोक्खं ण पावदि। तह बंधे चिंतंतो जीवोवि विमोक्खं ण पावदि।*

अर्थ - जिस प्रकार बंधन में बंधा हुआ बंध का चिन्तन करता हुआ (उससे) मुक्ति नहीं पाता है उसी प्रकार बंध का चिन्तन करते हुए जीव भी मोक्ष को प्राप्त नहीं करता है।

जह बंधे छित्तूण य बंधणबद्धो दु पावदि विमोक्खं।
तह बंधे छित्तूण य जीवो संपावदि विमोक्खं॥३२२॥

अन्वय - *जह बंधणबद्धो दु बंधे छित्तूण विमोक्खं पावदि तह जीवो बंधे छित्तूण य विमोक्खं संपावदि।*

अर्थ - जिस प्रकार बंधन में बद्ध प्राणी बंधन को छेदनकर मुक्त हो जाता है उसी प्रकार जीव कर्म बंधन को छेदनकर सम्यग् रूप से मोक्ष को प्राप्त करता है।

जह बंधे मुत्तूण य बंधण बद्धो दु पावदि विमोक्खं।
तह बंधे मुत्तूण य जीवो संपावदि विमोक्खं॥३२३॥

बंधाणं च सहावं वियाणिदु अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो ण रज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदि॥३२४॥

अन्वय - *जह बंधण बद्धोबंधे मुत्तूण विमोक्खं पावदि। तह जीवो बंधे मूत्तूण विमोक्खं संपावदि।*

बंधाणं सहावं च अप्पणो सहावं च वियाणिदु जो बंधेसु ण रज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदि।

अर्थ - जैसे बन्धन में बंधा हुआ बन्धन को त्यागकर मोक्ष को प्राप्त करता है (मुक्त हो जाता है) उसी प्रकार जीव बंध को छोड़कर मोक्ष को प्राप्त करता है।

बंध के स्वभाव को और अपने स्वभाव को जानकर जो बंधों में रत नहीं होता है वह कर्म से छुटकारा पा जाता है (कर्म बंधन से मुक्त हो जाता है)।

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियदेहिं।
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥३२५॥

अन्वय - *तहा पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा जीवो बंधो य णियदेहिं सलक्खणेहिं छिज्जंति।*

अर्थ - उसी प्रकार प्रज्ञा रूपी छेनी से छिन्न हुए नानात्व (विभिन्नता) को प्राप्त जीव और बंध अपने नियत लक्षणों से पृथकता को प्राप्त होते हैं।

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियदेहिं।
बंधो छेदेदव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो॥३२६॥

अन्वय - *तहा जीवो बंधो य णियदेहिं सलक्खणेहिं छिज्जंति बंधो छेदेदव्वो य सुद्धो अप्पा घेत्तव्वो।*

अर्थ - तथा जीव और बंध अपने नियत लक्षणों से अलग अलग होते हैं। अतः बंध का छेदन करना चाहिये और शुद्ध आत्मा को धारण करना चाहिये।

किह सो घिप्पइ अप्पा पण्णाए सो दु घिप्पदे अप्पा।
जह पण्णाए विहत्तो तह पण्णाए य घेत्तव्वो॥३२७॥

अन्वय - *सो अप्पा किह घिप्पइ सो अप्पा दु पण्णाए घिप्पदे। जह पण्णाए विहत्तो तह पण्णाए य घेत्तव्वो।*

अर्थ - वह आत्मा कैसे धारण किया जाता है? वह आत्मा तो प्रज्ञा (प्रत्यक्ष ज्ञान) से धारण किया जाता है। जिस प्रकार (वह) प्रज्ञा से विभक्त हुआ उसी प्रकार प्रज्ञा से धारण करना चाहिये।

पण्णाए घेत्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा॥३२८॥

अन्वय - *जो चेदा णिच्छयदो सो तु अहं पण्णाए घेत्तव्वो अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा।*

अर्थ - जो चेतन है वह तो निश्चय से मैं हूँ। प्रज्ञा से धारण किया जाना चाहिये। शेष (बचे हुए) जो भी भाव हैं वे मेरे से अन्य हैं ऐसा जानना चाहिये।

पण्णाए घेत्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा॥३२९॥

पण्णाए घेत्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जो भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा॥३३०॥

अन्वय - *जो दट्ठा णिच्छयदो सो तु अहं पण्णाए घेत्तव्वो अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा।*

जो णादा णिच्छयदो सो तु अहं पण्णाए घेत्तव्वो अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा।

अर्थ - जो दृष्टा है वह तो निश्चय से मैं हूँ, प्रज्ञा से धारण किया जाना चाहिये। शेष जो भाव है वे मेरे से अन्य हैं-ऐसा जानना चाहिये।

जो ज्ञाता है वह तो निश्चय से मैं हूँ, प्रज्ञा से धारण किया जाना चाहिये। शेष जो भाव है वे मेरे से अन्य हैं-ऐसा जानना चाहिये।

पण्णाए घेतव्वो उवलद्धो जो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा॥३३०ए॥

अन्वय - *णिच्छयदो जो उवलद्धो अहं तु पण्णाए घेतव्वो। अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा।*

अर्थ - निश्चय से जो उपलब्ध है वह तो मैं हूँ-प्रज्ञा से ग्रहण करना चाहिये। अवशेष जो भाव हैं वे मेरे से अन्य हैं-ऐसा जानना चाहिये।

को णाम भणिज्ज वुहो णादु सव्वे पराइए भावे।
मज्झमिणं ति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं॥३३१॥

अन्वय - *अप्पयं सुद्धं जाणन्तो को णाम वुहो सव्वे पराइए भावे णादु मिणं मज्झ तिय वयणं भणिज्ज।*

अर्थ - अपने को शुद्ध जानता हुआ कौन बुद्धिमान सारे अन्य भावों को जानकर ये मेरे हैं ऐसा वचन कहता है? अर्थात् कोई विद्वान् नहीं कहता।

थेणादि अवराहे कुव्वदि जो सो ससंकिदो होदि।
मा वज्झेजं केण वि चोरोत्ति जणह्मि वियरंतो॥३३२॥

जो ण कुणदि अवराहे सो णिस्संको दु जणवदे भमइ।
ण वि तस्स बज्झिदुं जे चिंता उप्पज्जइ कदाइ॥३३३॥

एवं हि सावरादो बज्झामि अहं ति संकिदो चेदा।
जो पुण णिरावराहो णिस्संकोहं ण बज्झामि॥३३४॥

अन्वय - *जो थेणादि अवराहे कुव्वदि सो चोरो जणम्मि वियरंतो अहं केण वि मावज्झे इत्ति ससंकिदो होदि।*

जो अवराहे ण कुणदि तस्स बज्झिदुं जे चिन्ता कदाइ ण उप्पज्जइ सो दु जणवदे णिस्संको भमइ।

एवं हि सावराहो चेदा अहं बज्झामि ति संकिदो पुण जो णिरावराहो अहं ण बज्झामि णिसंको।

अर्थ - जो चोरी आदि अपराध करता है वह चोर लोगों में विचरण करता हुआ मैं किसी के द्वारा बांधा जाऊँगा- ऐसा सशंकित होता है।

जो अपराध नहीं करता है उसको बंधने की चिन्ता कभी नहीं उत्पन्न होती है। अतः वह जनपद में निःशंक होकर भ्रमण करता है।

इस प्रकार अपराध सहित जीव, मैं बांधा जाऊँगा-ऐसा शंकित होता है और फिर वही निरपराध होकर मैं नहीं बांधा जाऊंगा निःशंक होता है।

संसिद्धि राधसिद्धं साधिदमाराधिदं च एहणो।
अवगदराधो जो खलु चेदा सो होदि अवराधो॥३३५॥

अन्वय - *संसिद्धि राधसिद्धं साधिद आराधिदं च एहणो। जो चेदा अवगतराधो सो खलु अवराधो होदि।*

अर्थ - सम्यक् प्रकार से सिद्धि, मोक्षमार्ग सिद्ध, साधित और आराधित ये एकार्थक हैं। जो आत्मा अपगतराध (मोक्षमार्ग से च्युत) होता है वह अपराध होता है।

जो पुण णिरावराधे चेदा णिस्संकिओ दु सो होदि।
आरादणाए णिच्चं वट्टदि अहं ति विजाणंतो॥३३६॥

अन्वय - *पुण जो चेदा णिरवराधे दु णिसंकिओ होदि सो अहं ति विजाणंतो णिच्चं आरादणाए वट्टदि।*

अर्थ - और जो निरपराध जीव तो निःशंकित होता है वह अपने को अच्छी तरह जानता हुआ नित्य आराधना में वर्तन करता है।

पडिकमणं पडिसरणं पडिहरणं धारणा णियत्ति य।
णिंदा गरुहा सोही अट्ठ विहो अमय कुंभो हु॥३३७॥

अप्पडिकमणं अप्पडिसरणं अप्परिहारो अधारणा चेव।
अणियत्ति य अणिंदागरुहा सोही अट्ठं विसकुंभो॥३३८॥

अन्वय - *पडिकमणं पडिसरणं पडिहरणं धारणा णियत्ति य णिंदा गरुहा सोही अट्ठविहो अमय कुंभो दु।*

अप्पडिकमणं अप्पडिसरणं अप्पड़िहारो अधारणा अणियत्ति अणिंदा अगरुहा सोही अट्ठं विसकुम्भो।

अर्थ - प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, प्रतिहरण, धारणा, निवृत्ति, निंदा, गरुहा, शुद्धि ये आठ प्रकार के अमृत कुम्भ हैं।

अप्रतिक्रमण, अप्रतिशरण, अप्रतिहरण, अधारणा, अनिवृति, अनिंदा, अगरुहा, अशुद्धि ये आठ प्रकार के विषकुम्भ हैं।

पडिकमणं पडिसरणं पडिहारो धारणा णियत्ति य।
णिंदा गरुहा सोही अट्ठविणा णिस विस कुंभो॥३३९॥

अप्पडिकमणं अप्पडिसरणं अप्पडिहारो अधारणा चेव।
अणियत्ति य अणिंदा अगरुहा सोही अवद कुंभो॥३४०॥

अन्वय - *पणिकमणं पडिसरणं पडिहारो धारणा णियत्ति णिंदा गरुहा य सोही अट्ठविणा णिस विसकुंभो।*

अप्पडिकमणं अप्पडिसरणं अप्पडिहारो अधारणा अणियत्ति अणिंदा य अगरुहा सोही अवदकुंभो।

अर्थ - प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निंदा, गरहा और शुद्धि इन आठ के बिना नियम से जीव सविषकुम्भ (दोष सहित) है।

अप्रतिक्रमण, अप्रतिसरण, अपरिहार, अधारणा, अनिवृत्ति, अनिंदा, अगरहा और अशुद्धि अव्रतकुम्भ हैं। (अयत्नाचार घट हैं)

टिप्पणी - अमय-धर्म, निर्विकल्पता, दोषमुक्तता, आराधना, मुक्तता और मोक्ष/संसार-विष है।

●●

सर्वविशुद्ध ज्ञानाधिकार

दवियं जं उपज्ञदि गुणेहि तं तेहिं जाणसु अणण्णं।
जह कड़यादीहिं दु पज्ञएहि कणय मणण्णमिह॥ ३४१ ॥

जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा दु देसिदा सुत्ते।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि॥ ३४२ ॥

ण कदो चि वि उप्पण्णो जह्मा कज्रं ण तेण सो आदा।
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमवि तेण ण सो होदि॥ ३४३ ॥

कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि।
उप्पज्रंति य णियमा सिद्धि दु ण दिस्सदे अण्णा॥ ३४४ ॥

अन्वय – *जं दवियं उपज्ञदि तं तेहिं गुणेहि अणण्णं जाणसु। जह इह कणयं कड़यादीहिं पज्ञएहि अणण्ण।*

सुत्ते जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा देसिदा तेहिं तं जीवमजीवं वा अणण्णं वियाणाहि।

जह्मा सो आदा कदोचि वि ण उप्पण्णो तेण ण कज्रं। किंचिवि ण उप्पादेदि तेण सो कारणमवि ण होदि।

णियमा तह कम्मं पडुच्च कत्ता या कत्तारं पडुच्च कम्माणि उप्पज्जंति अण्णा सिद्धि दु ण दिस्सदे।

अर्थ - जो द्रव्य उत्पन्न होता है उसको उन गुणों से अनन्य जानो। जिस प्रकार यहां कड़ा आदि पर्यायों से स्वर्ण अनन्य है।

सूत्र में जीव और अजीव के जो परिणाम कहे गये हैं उनमें उस जीव या अजीव को अनन्य जानो।

जब वह जीव किसी से भी उत्पन्न नहीं है उससे वह भी किसी का कार्य नहीं है और वह किसी को भी उत्पन्न नहीं करता है इससे वह किसी का कारण नहीं होता है।

नियम से कर्म की अपेक्षा से कर्त्ता है और उसी प्रकार कर्त्ता की अपेक्षा से वे कर्म उपजते हैं। इससे अन्य कोई सिद्धि नहीं दिखती है।

चेदा दु पयडियट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि।
पयडिवि चेदयट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि॥३४५॥

एवं बंधो य दुण्हं पि अण्णोण्णप्पच्चयेण हवे।
अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायदे॥३४६॥

अन्वय - *चेदा दु पयडियट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि पयडि वि चेदयट्ठं उप्पज्जदि विणस्सदि। एवं दुण्हंपि बंधो अण्णोण्णप्पच्चयेण हवे। तेण अप्पणो पयडीए य संसारो जायदे।*

अर्थ - आत्मा तो कर्म प्रकृति के निमित्त से उत्पन्न होता है और विनाश को प्राप्त होता है। कर्म प्रकृति भी चेतन के निमित्त से उत्पन्न होती है और नाश को प्राप्त होती है। इस प्रकार एक दूसरे के प्रत्यय से दोनों का बंध भी होता है और उससे कर्म प्रकृति व चेतन का संसरण होता है।

जा एस पयडि अट्ठं चेदगो ण विमुंचदि।
अयाणओ हवे ताव मिच्छाइट्ठी असंजादो॥३४७॥

जदा विमुञ्चदे चेदा कम्मफलमणंतयं।
तदा विमुत्तो हवदि जाणओ पस्सगो मुणी॥३४८॥

अन्वय - *जा एस चेदगो पयडि अट्ठं णा विमुंचदि ताव अयाणओ मिच्छादिट्ठी असंजादो हवे।*

जदा चेदा अणंतयं कम्मफलं विमुञ्चदे तदा मुणी विमुत्तो जाणओ पस्सगो हवदि।

अर्थ - जब तक यह जीव प्रकृति के निमित्त को नहीं त्यागता है तब तक (वह) अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंयमी है।

जब यह जीव कर्मों के अनन्त फलों को छोड़ देता है तब वह मुनि विमुक्त (कर्म प्रकृतियों से मुक्त) ज्ञाता, दृष्टा होता है।

अण्णाणी कम्मफलं पयडि सहावट्ठिदो दु वेदेदि।
णाणी पुण कम्मफलं जाणदि उदिदं ण वेदेदि॥३४९॥

अन्वय - *पयडि सहाव ट्ठिदो अण्णाणी दु कम्मफलं वेदेदि। पुण णाणी उदिदं कम्मफलं जाणदि ण वेदेदि।*

अर्थ - प्रकृति के स्वभाव में स्थित अज्ञानी कर्म के फलों को भोगता है और ज्ञानी उदय में आए हुए कर्म को जानता है परन्तु भोगता नहीं है।

जो पुण णिरावराहो चेदा णिस्संकिदो दु सो होदि।
आराहणाए णिच्चं वट्टदि अहमिदि विजाणंतो॥३५०॥

अन्वय - *पुण जो चेदा अहमिदि विजाणंतो णिच्चं आराहणाए वट्टदि सो णिरावराहो णिस्संकिदो दु होदि।*

अर्थ - पुन: जो जीव अपने को सम्यक् प्रकार से जानता हुआ नित्य आराधना में वर्तन करता है वह तो निरपराध और नि:शंकित है।

ण मुयदि पयडिमभव्वो सुट्ठुवि अज्झाइदूण सत्थाणि।
गुड़दुद्धंपि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति॥३५१॥

अन्वय - *पण्णया गुड़दुद्धंपि पिबंता णिव्विसा ण होंति अभव्वो सुट्ठु वि सत्थाणि अज्झाइदूण पयडिं ण मुयदि।*

अर्थ - (जैसे) सर्प मीठे दूध को पीता हुआ भी निर्विष नहीं होता है। (उसी प्रकार) अभव्य जीव शास्त्रों को अच्छी तरह अध्ययन करके भी कर्म प्रकृति (उदय में आए हुए कर्म के फलों) को नहीं छोड़ता है।

णिव्वेय समावण्णो णाणी कम्मफलं वियाणादि।
महुरं कडुयं बहुविहमवेदगो तेण सो होदि॥३५२॥

अन्वय - *णिव्वेय समावण्णो णाणी बहुविहं महुरं कडुयं कम्मफलं वियाणादि। तेण सो अवेदगो होदि।*

अर्थ - वैराग्य को प्राप्त ज्ञानी अनेक प्रकार के मधुर और कटु कर्म फल को जानता है, इससे वह उस कर्म फल का अवेदक होता है अर्थात् भोगता नहीं।

णवि कुव्वदि णवि वेददि णाणी कम्माणि बहु पयाराइं।
जाणइ पुण कम्मफलं बंधं पुण्णं च पावं च॥३५३॥

अन्वय - *पुण णाणी बंधं कम्मफलं पुण्णं पावं च जाणइ। बहु पयाराइं कम्माणि णवि कुव्वदि णवि वेददि।*

अर्थ - ज्ञानी बंध और कर्म के फल पुण्य और पाप को जानता है बहुत प्रकार के कर्मों को न तो करता है और न वेदन करता है।

दिट्ठी सयं पि णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणदि य बन्धमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव॥३५४॥

अन्वय - *दिट्ठी तह सयं णाणं पि अकारयं अवेदयं च बंधं कम्मुदयं णिज्जरं मोक्खं चेव जाणदि।*

अर्थ - दृष्टि, उसी प्रकार स्वयं ज्ञान भी अकारक और अवेदक है। अत: (ज्ञान) कर्म के बन्ध, उदय, निर्जरा और मोक्ष को जानता है।

लोगस्स कुणदि विण्हु सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते।
समणाणंपि य अप्पा जइ कुव्वइ छव्विहे काए॥ ३५५॥

लोगसमणाणमेवं सिद्धंतं पडि ण दिस्सदि विसेसो।
लोगस्स कुणदि विण्हु समणाणं अप्पओ कुणइ॥ ३५६॥

एवं ण कोवि मोक्खो दीसइ लोग समणाणं दोण्हं पि।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेव मणु आसुरे लोगे॥ ३५७॥

अन्वय - *जदि विण्हु लोगस्स सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते कुणदि य समणाणं अप्पापि छव्विहे काए कुव्वइ। लोगस्स विण्हु कुणइ समणाणं अप्पणो कुणदि एवं लोग समणाणं सिद्धंतं पडि विसेसो ण दिस्सदि। लोगे णिच्चं सदेवमणुआसुरे कुव्वंताणं लोग समणाणं दोण्हंपि कोवि मोक्खो ण दीसइ।*

अर्थ - यदि विष्णु लोक के देव, नारकी, तिर्यञ्च मनुष्य जीवों को करता है और श्रमणों का आत्मा भी छह प्रकार के काय को करता है। लोक का कर्त्ता विष्णु और श्रमणों का आत्मा काय को करता है। इस प्रकार लोक और श्रमणों के सिद्धान्त में कोई विशेषता दिखाई नहीं देती है। इस प्रकार मनुष्य असुर, देव सहित लोक में नित्य करते हुए लोक और श्रमण दोनों का कोई भी मोक्ष नहीं दीखता है।

ववहार भासिदेण दु परदव्वं मम भणंति अविदिदत्था।
जाणंति णिच्छयेण दु ण य इह परमाणु मेत्त मम किं चि॥३५८॥

जह कोवि णरो जंपदि अम्हाणं गामविसयपुररत्था।
णय होंति ताणि तस्स दु भणदि य मोहेण सो अप्पा॥३५९॥

एवमेव मिच्छदिट्ठि णाणी णिस्संसयं हवदि एसो।
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणदि॥३६०॥

तह्मा ण मेत्ति णच्चा दोण्हं वि एदाण कत्ति ववसाओ।
परदव्वे जाणंतो जाणिज्जो दिट्ठि रहिदाणं॥३६१॥

(चतुष्कम्)

अन्वय - *अविदिदत्था ववहार भासिदेण परदव्वं मम भणंति य णिच्छयेण परमाणुमेत्त किं चि दु मम ण जाणंति। जह को वि णरो गामविसयपुररत्था अम्हाणं जंपदि ताणि दु तस्स ण होंति सो अप्पा मोहेण भणदि। एवं जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणदि एसो णाणी णिस्संसयं मिच्छदिट्ठि एव हवदि। तम्हा परदव्वे णच्चा ण मेत्ति जाणंतो एदाण दोण्हं वि कत्ति ववसाओ दिट्ठि रहिदाणं जाणिज्जो।*

अर्थ - तत्व को नहीं जानने वाले व्यवहार कथन से परद्रव्य मेरा है-ऐसा कहते हैं और निश्चय से किंचित् परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है-ऐसा जानते हैं। जैसे कोई भी पुरुष ग्राम, देश, नगर, राष्ट्र को अपना कहता है और वे उसके नहीं होते हैं किन्तु वह जीव मोह से अपना कहता है। इस प्रकार जो परद्रव्य मेरा है-ऐसा जानता हुआ उसे अपना करता है ऐसा जानने वाला निःसन्देह मिथ्यादृष्टि होता है।

इसलिए परदव्य मेरे नहीं हैं-ऐसा जानकर यह जानते हुए इन दोनों के कर्तृत्व व्यवसाय को मिथ्यादृष्टियों का जानो।

केहिचिदु पज्जयेहिं विणस्सदे णेव केहिचिदु जीवो।
जह्मा तह्मा वेददि सो वा अण्णो व णेयंतो॥३६२॥

केहिं चि दु पज्झेयेहि विणस्सदे णेव केहिचि दु जीवो।
जह्मा तह्मा वेददि सो वा अण्णो वा णेयंतो॥३६३॥

जो चेव कुणदि सो चेव ण वेदगो जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठि अणारिहदो॥३६४॥

अण्णो करेदि अण्णो परिभुंजदि जस्स एस सिद्धंतो।
सो जीवो णादव्वो मिच्छादिट्ठि अणारिहदो॥३६५॥

अन्वय - *जह्मा जीवो केहिंचिदु पज्जयेहिं विणस्सदे केहिंचिदु णेव। तह्मा सो वा अण्णो व वेददि ण एयंतो। जह्मा जीवो केहिंचि दु पज्जयेहिं विणस्सदे केहिंचि दु णेव तह्मा सो वा अण्णो व वेददि ण एयंतो। जो चेव कुणदि सो चेव ण वेदगो जस्स एस सिद्धंतो सो अणारिहदो जीवो मिच्छादिट्ठी णादव्वो। अण्णो करेदि अणो परिभुंजइ जस्स एस सिद्धंतो सो अणारिहदो जीवो मिच्छादिट्ठी णादव्वो।*

अर्थ - जिस कारण से जीव किन्हीं पर्यायों से विनाश को प्राप्त होता है और किन्हीं से नहीं होता है उस कारण से वह अथवा दूसरा वेदन करता (भोगता) है-ऐसा एकान्त नहीं है। जिस कारण से जीव किन्हीं पर्यायों से विनाश को प्राप्त होता है और किन्हीं से नहीं होता है। उस कारण सेवह अथवा दूसरा वेदन करता है-ऐसा एकान्त नहीं है और जो करता है वह नहीं भोगता है-जिसका ऐसा सिद्धांत है उस जीव को अनार्हत् मिथ्यादृष्टि समझना चाहिये। दूसरा करता है, दूसरा भोगता है-जिसका ऐसा सिद्धांत है उस जीव को अनार्हत् मिथ्यादृष्टि समझना चाहिये।

मिच्छत्त जदि पयडि मिच्छादिट्ठि करेदि अप्पाणं।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्ता॥३६६॥

सम्मत्ता जदि पयडि सम्मादिट्ठि करेदि अप्पाणं।
तह्मा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्ता॥३६७॥

अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणदि मिच्छत्तं।
तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छादिट्ठि ण पुणो जीवो॥३६८॥

अह जीवो पयडी तह पुग्गलदव्वे कुणंति मिच्छत्तं।
तह्मा दोहिकदत्तं दोण्णि वि भुंजंति तस्स फलं॥३६९॥

अह ण पयडी ण जीवो पुग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं।
तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा॥३७०॥

अन्वय - *जदि मिच्छत्त पयडि अप्पाणं मिच्छादिट्ठि करेदि तह्मा णणु दे अचेदणा पयडी कारगो पत्ता।*

जदि सम्मत्ता पयडि अप्पाणं सम्मादिट्ठि करेदि तह्मा णणु दे अचेदणा पयडी कारगो पत्ता।

अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स मिच्छत्तं कुणदि तह्मा जीवो मिच्छादिट्ठि ण पुण पुग्गलदव्वं ।

अह जीवो तह पयडी पुग्गलदव्वे मिच्छत्तं कुणंति तह्मा दोहिकदत्तं तस्स फलं दोण्णि वि भुंजंति।

अह ण पयडी ण जीवो पुग्गलदव्वं मिच्छत्तं करेदि तह्मा पुग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा।

अर्थ - यदि मिथ्यात्व प्रकृति जीव को मिथ्यादृष्टि करती है तो वह अचेतन प्रकृति कर्त्तापने को प्राप्त हो गई।

यदि सम्यक्त्व प्रकृति आत्मा को सम्यग्दृष्टि करती है तो नियम से तेरी अचेतन प्रकृति कर्त्तापन को प्राप्त हो गई।

अथवा जीव पुद्गल द्रव्य के मिथ्यात्व को करता है तो जीव मिथ्यादृष्टि है पुद्गल द्रव्य नहीं और जीव तथा प्रकृति (दोनों) पुद्गल द्रव्य में मिथ्यात्व को करते हैं। इस कारण से दोनों के किए हुए उसके फल को दोनों ही भोगते हैं।

न प्रकृति, न जीव पुद्गल द्रव्य को मिथ्या करते हैं, इस कारण पुद्गल द्रव्य (स्वयं) मिथ्यात्व है, वस्तुतः यह बात मिथ्या नहीं है?

कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जदि णाणी तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहि सुवाविज्जदि जग्गाविज्जदि तहेव कम्मेहिं॥ ३७१ ॥

कम्मेहि सुहाविज्जदि दुक्खाविज्जदि तहेव कम्मेहिं।
कम्मेहि य मिच्छत्तं णिज्जदि य असंजमं चेव॥ ३७२ ॥

कम्मेहि भमादिज्जदि उड्ढमहं चावि तिरियलोयं च।
कम्मेहि चेव किज्जदि सुहासुहं जेत्तियं किंचि॥ ३७३ ॥

जह्मा कम्मं कुव्वदि कम्मं देदित्ति हरदि जं किंचि।
तह्मा सव्वे जीवा आकारया हुंति आवण्णा॥ ३७४ ॥

पुरुसित्थिआहिलासी इत्थि कम्मं च पुरिसमहिलसदि।
एसा आयरियपरम्परागदा एरिसी दु सुदी॥ ३७५ ॥

तह्मा ण कोवि जीवो अबंभचारी दु तुह्ममुवदेसि।
जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसदि इदि भणिदं॥ ३७६ ॥

जह्मा घादेदि परं परेण घादिज्जदे य सा पयडी।
एदेणत्थेण दु किल भण्णदि परघादणामेत्ति॥ ३७७ ॥

तह्मा ण कोइ जीवो उवघाऊ करोंति तुह्म उवदेसे।
जह्मा कम्मं चेवहि कम्मं घादेदि इदि भणिदं॥ ३७८ ॥

एदं संखुवदेसं जे दु परुवेंति एरिसं समणा।
तेसिं पयडी कुव्वदि अप्पा य अकारगो सव्वे॥ ३७९॥

अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणदि।
एसो मिच्छ सहावो तुह्मं एवं मुणंतस्स॥ ३८०॥

अत्ता णिच्चा असंखेज्जपदेसो देसिदो दु समयह्मि।
णवि सो सक्कदि तत्तो हीणो अहियो य कादुं जे॥ ३८१॥

जीवस्स जीवरुवं वित्थरदो जाण लोगविण्णो हि।
तत्तो सो किं हीणो अहिओ व कदं भणसि दव्वं॥ ३८२॥

अह जाणगो दु भावो णाण सहावेण अत्थि देत्ति मदं।
तह्मा ण वि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणदि॥ ३८३॥

अन्वय - *कम्मेहि दु अण्णाणी किज्जदि तहेव कम्मेहिं णाणी। कम्मेहि सुवाविज्जदि तहेव कम्मेहिं जग्गाविज्जदि।*

कम्मेहि सुहाविज्जदि तहेव कम्मेहिं दुक्खाविज्जदि। कम्मेहि य मिच्छत्तं असंजमं चेव णिज्जदि।

कम्मेहि च उड्ढमहं तिरियलोयं चावि भमादिज्जदि। जेत्तियं चेव किंचि सुहासुहं कम्मेहि किज्जदि।

जह्मा कम्मं जं किंचि कुव्वदि देदित्ति हरदि तह्मा सव्वे जीवा अकारया आवण्णा हुंति।

पुरुस कम्मं इत्थिआहिलासी इत्थि कम्मं च पुरिसं अहिलसदि एरिसि सुदी दु आयरियपरंपरागदा।

जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसदि इदि भणिदं तह्मा तुह्ममुवदेसि दु कोवि जीवो अबंभचारी ण।

जह्मा सा पयडी परं घादेदि परेण घादिज्जदे य एदेणत्थेण परघादणामेत्ति दु किल भण्णदि।

तह्मा तुह्म उवदेसे कोइ जीवो उवघाऊ ण करोंति। जह्मा कम्मं चेव हि कम्मं घादेदि इदि भणिद।

एदं जे दु समणा एरिसं संखुवदेसं परुवेंति तेसिं पयडी सव्वे कुव्वदि अप्पा य अकारगो।

अहवा मज्झं अप्पा अप्पणो अप्पाणं कुणदि मणसि एवं मुणंतस्स तुह्मं एसो मिच्छा सहावो।

समयह्मि दु अत्ता णिच्चा असंखेज्जपदेसो देसिदो सो तत्तो हीणो अहियो य कादुं ण वि सक्कदि।

हि वित्थरदो जीवस्स जीवरुवं लोगविण्णो जाण। तत्तो दव्वं किं कदं हीणो अहियो व भणसि।

अह णाणसहावेण दु जाणओ भावो अत्थि देत्ति मद॥ तह्मा अप्पा सयमप्पणो अप्पयं ण कुणदि।

अर्थ - जीव कर्म से अज्ञानी किया जाता है, उसी प्रकार कर्मों से ज्ञानी किया जाता है। कर्मों से ही सुलाया जाता है, वैसे ही कर्मों से जगाया जाता है।

कर्मों से ही सुखी किया जाता है, वैसे ही कर्मों से दुखी किया जाता है। कर्मों से ही मिथ्यात्व पैदा (निर्गम) होता है और उसी प्रकार कर्म से असंयम पैदा होता है।

कर्मों से उर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यक्लोक में भ्रमण कराया जाता है और जितना शुभ अशुभ है वह कर्मों से किया जाता है।

जिस कारण से कर्म करता है, देता है और जो कुछ भी हरता है उससे सारे जीव अकारकपने को प्राप्त हो गये।

पुरुष कर्म स्त्री का अभिलाषी है और स्त्री कर्म पुरुष की अभिलाषा करता है ऐसी श्रुति (कथनी) आचार्य परम्परा से चली आई है।

जब कर्म ही कर्म की अभिलाषा करता है-ऐसा कहा गया है। इस कारण से तुम्हारे उपदेश में कोई भी जीव अब्रह्मचारी नहीं है।

यत: वह प्रकृति पर प्रकृति (दूसरे) को घात करती है, वह दूसरी प्रकृति से घात की जाती है। इस कारण से किसी (जीव) को परघातक कैसे कहते हैं? इस कारण

तुम्हारे उपदेश में कोई भी जीव उपघातक नहीं है। जब कर्म ही कर्म का घात करता है-ऐसा कहा गया है।

इस प्रकार जो श्रमण ऐसे सांख्य के उपदेश की प्ररुपणा करते हैं उनकी प्रकृति सब करती है और आत्मा अकारक है।

अथवा मेरी आत्मा अपनी आत्मा को करती है-तू ऐसा मानता है। ऐसा मानने वाले तेरा यह मिथ्या स्वभाव है (मिथ्यात्व है)।

आगम में जो आत्मा नित्य, असंख्यात प्रदेशी उपदेशित है उस आत्मा को उससे हीन व अधिक कोई करने में समर्थ नहीं है।

निश्चय से विस्तार पूर्वक जीव का जीव रूप लोक प्रमाण जानो। उससे उस द्रव्य को क्या कैसे हीन अथवा अधिक कहता है।

ज्ञान स्वभाव से आत्मा ज्ञायक भाव वाला है-ऐसा माना गया है। इसलिए आत्मा स्वयं अपने आत्मा को नहीं करता है।

दंसण णाण चरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे विसए।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तम्हि विसयह्मि ॥ ३८४ ॥

दंसण णाण चरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे कम्मे।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तह्मि कम्ममिह ॥ ३८५ ॥

दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे काये।
तह्मा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु ॥ ३८६ ॥

णाणस्स दंसणस्स य भणिदो घादो तहा चरित्तस्स।
णवि तह्मि कोवि पुग्गलदव्वे घादो दु णिद्दिट्ठो ॥ ३८७ ॥

जीवस्स जे गुणा केई णत्थि ते खलु परेसु दव्वेसु।
तह्मा सम्मादिट्ठिस्स णत्थि रागो दु विसए ॥ ३८८ ॥

रागो दोसो मोहो जीवस्स दु ते अणण्ण परिणामा।
एदेण कारणेण दु सद्दादिसु णत्थि रागादी ॥ ३८९ ॥

अन्वय - *अचेदणे विसए दंसण णाण चरित्तं किंचिवि णत्थि। तह्मा तम्हि विसयह्मि चेदयिदा किं घादयदे।*

अचेदणे कम्मे दंसण णाण चरित्तं किंचिवि णत्थि। तह्मा तह्मि कम्ममिह चेदयिदा किं घादयदे।

अचेदणे काये दंसण णाणचरित्तं किंचिवि णत्थि। तह्मा तेसु कायेसु चेदयिदा किं घादयदे।

णाणस्स दंसणस्स तहा चरित्तस्स घादो भणिदो तह्मि पुग्गलदव्वे कोवि घादो दु णवि णिद्दिट्ठो।

खलु जीवस्स जे गुणा ते परेसु दव्वेसु केई णत्थि। तह्मा सम्मादिट्ठिस्स विसए रागो णत्थि।

रागो दोसो मोहो जीवस्स दु अणण्ण परिणामा। एदेण कारणेण सद्दादिसु रागादी णत्थि।

अर्थ - इन्द्रियगोचर अचेतन पदार्थ में दर्शन, ज्ञान और चारित्र कुछ भी नहीं है। इसलिए उन पदार्थों में आत्मा (जीव) क्या घात करता है? अर्थात् कुछ घात नहीं करता है।

अचेतन कर्म में दर्शन, ज्ञान, चारित्र कुछ भी नहीं है। इसलिए चेतयिता (जीव) उन कर्मों में क्या घात करता है?

अचेतन काय में दर्शन, ज्ञान, चारित्र कुछ भी नहीं है। इस कारण उस काय में चेतयिता क्या घात करता है?

दर्शन, ज्ञान और चारित्र का घात कहा गया है और उस पुद्गल द्रव्य में तो कोई भी घात नहीं कहा गया है।

वस्तुतः जीव के जो गुण हैं वे परद्रव्य में कोई भी नहीं हैं। इसलिए सम्यग्दृष्टि का विषयों में राग नहीं है।

राग, दोष, मोह जीव के अनन्य परिणाम हैं। इस कारण से शब्द आदि में रागादि नहीं है।

अण्ण दवियेण अण्णदवियस्स णो कीरदे गुणविघाओ।
तह्मा दु सव्वदव्वा उप्पज्जंते सहावेण॥३९०॥

अन्वय - *अण्णदवियस्स अण्ण दवियेण गुणविघाओ णो कीरदो तह्मा दु सव्वदव्वा सहावेण उप्पज्जंते।*

अर्थ - अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य के गुण का घात नहीं किया गया है, इसलिए सब द्रव्य स्वभाव से उत्पन्न होते हैं।

जह सिप्पिओ दु कम्मं कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि ण य तम्मओ होदि॥३९१॥

जह सिप्पिओ दु करणेहि कुव्वदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो विय करणेहिं कुव्वदि ण य तम्मओ होदि॥३९२॥

जह सिप्पिओ दु करणाणिय गिह्णदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो करणाणि गिह्णदि ण य तम्मओ होदि॥३९३॥

जह सिप्पिओ दु कम्मफलं भुंजदि ण य सो दु तम्मओ होदि।
तह जीवो कम्मफलं भुंजदि ण य सो दु तम्मओ होदि॥३९४॥

एवं ववहारस्स दु वत्तव्वं दरिसणं समासेण।
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकदं तु जं होदि॥३९५॥

जह सिप्पओ दु चेट्ठं कुव्वदि हवदि य तहे अणण्णो सो।
तह जीवोवि य कम्मं कुव्वदि हवदि य अणण्णो सो॥३९६॥

जह चेट्ठं कुव्वंतो दु सिप्पिओ णिच्च दुक्खिदो होदि।
तत्तो सिया अणण्णो तह चेट्ठंतो दुहि जीवो॥३९७॥

अन्वय - *जह सिप्पिओ दु कम्मं कुव्वदि य सो दु तम्मओ ण होदि तह जीवो वि कम्मं कुव्वदि य तम्मओ ण होदि।*

जह सिप्पिओ दु करणेहि कुव्वदि य सो दु तम्मओ ण होदि तह जीवो वि य करणेहिं कुव्वदि तम्मओ य ण होदि।

जह सिप्पिओ करणाणि य गिह्णदि य सो दु तम्मओ ण होदि तह जीवो करणाणि गिह्णदि तम्मओ ण य होदि।

जह सिप्पिओ कम्मफलं भुंजदि सो य दु तम्मओ ण होदि। तह जीवो कम्मफलं भुंजदि सो य दु तम्मओ ण होदि।

एवं दु वत्तव्वं समासेन ववहारस्स दरिसण। जं परिणाम कदं तु होदि णिच्छयस्स वयणं सुणु।

जं सिप्पओ दु चेट्ठं कुव्वदि य तहा सो अणण्णो तहे जीवोवि कम्मं कुव्वदि य सो अणण्णो हवदि।

जह चेट्ठं कुव्वंतो दु सिप्पिओ णिच्च दुक्खिदो होदि तत्तो सिया अणण्णो तहा चेट्ठंतो जीवो दुहि।

अर्थ - जिस प्रकार शिल्पी कर्म को करता है और वह तो तन्मय नहीं होता है। उसी प्रकार जीव भी कर्म को करता है (परन्तु) तन्मय नहीं होता है।

जैसे शिल्पी अपने उपकरणों से (शिल्प कार्य को) करता है परन्तु वह तो उन उपकरणों से तन्मय नहीं होता है वैसे ही जीव भी करणों (इन्द्रियों) से करता है, परन्तु वह तन्मय नहीं होता है।

जैसे शिल्पी उपकरणों को ग्रहण करता है परन्तु उससे तन्मय नहीं होता है उसी प्रकार जीव इन्द्रियों को ग्रहण करता है परन्तु उनसे तन्मय नहीं होता है।

जैसे शिल्पी अपने कर्म (शिल्प) के फल को भोगता है, परन्तु वह तन्मय नहीं होता है। उसी प्रकार जीव कर्मफल को भोगता है, किन्तु तन्मय नहीं होता है।

इस प्रकार यह कथन संक्षेप से व्यवहार दर्शन है। जो परिणाम कृत होता है उस निश्चय के वचन को सुनो।

यथा शिल्पी चेष्टा तो करता है और वह उससे अनन्य है। वैसे जीव भी कर्म करता है और उससे वह अनन्य होता है।

जैसे चेष्टा करता हुआ शिल्पी नित्य दुखित होता है (कष्ट सहता है) वैसे ही जीव चेष्टा करता हुआ दुखी और उससे कथंचित् अनन्य है।

जह सेडिया दु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होदि।
तह जाणगो दु ण परस्स जाणगो जाणगो सो दु॥३९८॥

जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया य सा होदि।
तह पस्सगो दु ण परस्स पस्सगो पस्सगो सो दु॥३९९॥

जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया दु सा होदि।
तह संजदो दु ण परस्स संजदो संजदो सो दु॥४००॥

जह सेटिया दु ण परस्स सेटिया सेटिया य सा होदि।
तह दंसणं दु ण परस्स दंसणं दंसणं तं तु तच्च॥४०१॥

एवं तु णिच्छणयस्स भासिदं णाणदंसणचरित्ते।
सुणु ववहारणयस्स वत्तव्वं से समासेण॥४०२॥

जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं जाणदि णादा वि सएण भावेण॥४०३॥

जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं पस्सदि जीवोवि सएण भावेण॥४०४॥

जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं विजहदि णादा वि सएण भावेण॥४०५॥

जह परदव्वं सेटदि हु सेटिया अप्पणो सहावेण।
तह परदव्वं विरमदि विरदोवि सयेण भावेण॥४०६॥

एसो ववहारस्स दु विणिच्छयो णाणदंसणचरित्ते।
भणिदो अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णादव्वो॥४०७॥

अन्वय - *जह सेडिया दु ण परस्स सा य सेडिया सेडिया होदि। तह जाणगो दु ण परस्स सो जाणगो दु जाणगो।*

जह सेटिया दु ण परस्स सा य सेटिया सेटिया होदि। तह पस्सगो दु ण परस्स सो पस्सगो दु पस्सगो।

जह सेटिया दु ण परस्स सा य सेटिया सेटिया होदि। तह संजदो दु ण परस्स सो संजदो दु संजदो।

जह सेटिया दु ण परस्स सा सेटिया य सेटिया होदि। तह दंसणं दु ण परस्स तं दंसणं तच्च तु दंसण।

एवं णिच्छयणयस्स णाणदंसणचरित्ते भासियं से ववहारणयस्स वत्तव्वं समासेण सुणु।

जह सेटिया हु अप्पणो सहावेण परदव्वं सेटदि तह णादा वि सएण भावेण परदव्वं जाणदि।

जह सेटिया अप्पणो सहावेण परदव्वं सेटदि तह जीवोवि सएण भावेण परदव्वं पस्सदि।

जह सेटिया अप्पणो सहावेण परदव्वं सेटदि तह णादा वि सएण भावेण परदव्वं विजहदि।

जह सेटिया अप्पणो सहावेण परदव्वं सेटदि तह विरदो वि सयेण भावेण परदव्वं विरमदि।

एवं णाणदंसणचरित्ते ववहारस्स दु विणिच्छओ भणिदो अण्णेसु पज्ञएसु वि एमेव णादव्वो।

अर्थ - जैसे सेडिया (खड़िया) पर की नहीं है, वह सेडिया स्वयं ही सेडिया है। वैसे ही ज्ञायक पर का नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है।

जैसे सेडिया (खड़िया) पर की नहीं है, सेडिया सेडिया है, वैसे ही दृष्टा स्वयं ही दृष्टा है, पर का दृष्टा नहीं है।

जैसे सेडिया (खड़िया) पर की नहीं है, सेडिया सेडिया है, वैसे ही संयत पर का नहीं है, वह संयत तो स्वयं संयत है।

जैसे सेडिया पर की नहीं है, सेडिया स्वयं सेडिया है, वैसे ही श्रद्धान पर का नहीं है, वह श्रद्धान तो स्वयं श्रद्धान है।

इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र का कथन निश्चय से किया है उसका व्यवहार नय का वक्तव्य संक्षेप से सुनो।

जैस सेडिया अपने स्वभाव से परद्रव्य को सफेद करती है वैसे ही ज्ञाता भी अपने भाव से परद्रव्य को जानता है।

जैसे सेडिया अपने स्वभाव से परद्रव्य को सफेद करती है वैसे ही जीव भी अपने भाव से परद्रव्य को देखता है।

जैसे सेडिया अपने स्वभाव से परद्रव्य को सफेद करती है वैसे ही ज्ञाता (जीव) भी स्व-भाव से परद्रव्य छोड़ता है।

जैसे सेडिया अपने स्वभाव से परद्रव्य को सफेद करती है वैसे ही विषयों से विरत अपने स्वभाव से परद्रव्यों से विरत होता है।

इस प्रकार दर्शन, ज्ञान और चारित्र में व्यवहार का निश्चित कथन किया है और अन्य पर्यायों में भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

कम्मं जं पुव्वकदं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं।
तत्तो णियत्तदे अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं॥४०८॥

कम्मं जं सुहमसुहं जह्मि य भावेणि बज्झदि भविस्सं।
तत्तो णियत्तदे जो सो पच्चक्खाणं हवे चेदा॥४०९॥

जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि काले अणेय वित्थरविसेसं।
तं दोसं जो चेयइ स खलु आलोयणं चेदा॥४१०॥

णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदि णिच्चं पि जो दु पडिक्कमदि।
णिच्चं आलोचेदि य सो दु चरित्तं हवदि चेदा॥४११॥

अन्वय - *अणेय वित्थरविसेसं पुव्वकदं जं सुहासुहं कम्मं तत्तो जो अप्पयं णियत्तदे सो तु पडिक्कमण।*

जह्मि भावह्मि भविस्सं जं सुहमसुहं कम्मं बज्झदि तत्तो जो णियत्तदे सो चेदा पच्चक्खाणं हवे।

जं संपडि उदिण्णं अणेय विस्थर विसेसं सुहमसुहं दोसं जो दु चेयइ खलु स चेदा आलोयण।

जो णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वदि णिच्चं पि जो पडिक्कमदि णिच्चं आलोचेयदि सो चेदा हु चरित्तं हवदि।

अर्थ - अनेक प्रकार के विशेष विस्तार वाले पूर्व में किए हुए शुभ अशुभ कर्मों से जो अपने को निवृत्त करता है वह प्रतिक्रमण है।

जिन भावों से भविष्य में जो शुभ अशुभ कर्म बंधता है, जो उससे निवृत्ति करता है वह जीव प्रत्याख्यान होता है।

जो वर्तमान उदय में आए हुए अनेक विस्तार वाले शुभ-अशुभ दोषों को त्यागता है वह निश्चय से आलोचना जीव होता है।

जो नित्य प्रत्याखान करता है, जो नित्य प्रतिक्रमण भी करता है, नित्य जो आलोचना करता है वह जीव का चारित्र है।

णिंदिद संथुदवयणाणि पोग्गला परिणमंति बहुगाणि।
ताणि सुणिदूण मूढो तुसदि रूसदि य अहं भणिदो॥४१२॥

पुग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणमदं तस्स जदि गुणो अण्णो।
तह्मा ण तुमं भणिदो किंचिवि किं रुससे अवुहा॥४१३॥

असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणदि सुणसु मंति सो चेव।
णय एदि विणिग्गहिदुं सो दु विसयमागदं सद्दं॥४१४॥

असुहं सुहं व रुवं ण तं भणदि पेक्खमंति तं चेव।
णय एदि विणिग्गहिदुं चक्खुविसयमागदं रुवं॥४१५॥

असुहो सुहो व गंधो ण तं भणदि जिग्घणादिमत्ति सो चेव।
णय एदि विणिग्गहिदुं घाणविसयमागदं गंधं॥४१६॥

असुहो सुहो व रसो ण तं भणदि रसय मंति सो चेव।
णय एदि विणिग्गहिदुं जिब्भविसयमागदं तु रसं॥४१७॥

असुहो सुहो य फासो ण तं भणदि फासमंति सो चेव।
णय एदि विणिग्गहिदुं कायविसयमागदं फासं॥४१८॥

असुहो सुहो व गुणो ण तं भणदि बुज्झमंति सो चेव।
णय एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं तु गुणं॥४१९॥

असुहं सुहं च दव्वं ण तं भणदि बुज्झमंति सो चेव।
णय एदि विणिग्गहिदुं बुद्धिविसयमागदं दव्वं॥४२०॥

रुवादि सुहं असुहं किं चि वि दुक्खं सुहं व णवि कुणदि।
सक्कं पवसेण सुहं दुक्खं वा होदि सव्वं जोगे॥४२१॥

एवं तु जाणिदूण य उवसमं णेव गच्छदे मूढो।
णिग्गहमणा परस्स य सयं च बुद्धि सिवमपत्तो॥४२२॥

अन्वय - *पोग्गला बहुगाणि णिंदिद संथुदवयणाणि परिणमंति। अहं भणिदो ताणि सुणिदूण मूढो तूसदि रूसदि य।*

जदि पुग्गलदव्वं सद्दत्त परिणमदं तस्स अण्णो गुणो। तह्मा तुमं किंचिवि ण भणिदो अवुहा किं रुससे।

असुहो सुहो व सद्दो तं ण भणदि मंति सो चेव सुणसु। ण य दु सो विसयमागदं सद्दं विणिग्गहिदुं एदि।

असुहं सुहं च रुवं तं ण भणदि मंति पेक्ख ण तं चेव चक्खुविसयमागदं रुवं विणिग्गहिदुं एदि।

असुहो सुहो व गंधो तं ण भणदि मंति जिग्घणदि सो चेव
घाणविसयमागदं गंधं विणिग्गहिदुं एदि।

असुहो सुहो व रसो तं ण भणदि मंति रसय ण सो चेव
जिब्भविसयमागदं तु रसं विणिग्गहिदुं एदि।

असुहो सुहो व फासो तं ण भणदि मंति फास ण सो चेव
कायविसयमागदं फासं विणिग्गहिदुं एदि।

असुहो सुहो व गुणो तं ण भणदि मंति बुज्झण चेव सो
बुद्धिविसयमागदं गुणं विणिग्गहिदुं एदि।

असुहं सुहं च दव्वं तं ण भणदि मंतिबुज्झ चेव सो ण
य बुद्धिविसयमागदं दव्वं विणिग्गहिदुं एदि।

रुवादि सुहं असुहं किंचि वि दुक्खं सुहं वा णवि कुणदि
जोगे पवसेण सव्वं सुहं दुक्खं वा सक्कं होदि।

एवं तु जणि दूण सयं सिवं बुद्धिं अपत्तो मूढो परस्स
दव्वस्स णिग्गहमणा उवसमं णेव गच्छदे।

अर्थ - पुद्‌गल बहुत प्रकार के निंदित और संस्तुत वचन रूप परिणमन करते हैं। यह मुझे कहा गया है-उनको सुनकर मूढ़ रुष्ट होता है और तुष्ट होता है।

यदि पुद्‌गल द्रव्य का शब्द रूप परिणमन उसका (पुद्गल द्रव्य का) अन्य (जीव से इतर) गुण है, अतः तुझे (जीव को) कुछ भी नहीं कहा गया। मूर्ख! तू क्यों रूसता (रुष्ट होता) है।

अशुभ व शुभ शब्द तुझको नहीं कहता है कि मुझे सुनो और न ही वह श्रोत्रेन्द्रिय के विषय में आए हुए शब्द का अवरोध करने को जाता है।

अशुभ व शुभ रूप तुमको नहीं कहता है कि तुम मुझे देखो और न ही वह चक्षु इन्द्रिय विषय में आए हुए रूप का अवरोध करने को जाता है।

अशुभ व शुभ गंध तुझ को नहीं कहता है कि तुम मुझे सूंघो और न ही वह घ्राण इन्द्रिय के विषय में आए हुए गंध का अवरोध करने को जाता है।

अशुभ व शुभ रस तुझ को नहीं कहता है कि तुम मुझे चखो और न ही वह रसना इन्द्रिय के विषय में आए हुए रसों का अवरोध करने को जाता है।

अशुभ व शुभ स्पर्श तुझको नहीं कहता है कि तुम मुझे स्पर्श करो और न ही वह काय विषय में आए हुए स्पर्श का अवरोध करने को जाता है।

अशुभ और शुभ गुण तुझको नहीं कहता है कि मुझको तुम जानो और न ही वह बुद्धि के विषय में आए हुए गुण का अवरोध करने को जाता है।

अशुभ और शुभ द्रव्य तुझको नहीं कहता है कि मुझे जानो और न ही वह बुद्धि के विषय में आए हुए द्रव्य को अवरोध करने को जाता है।

रूपादि शुभ अशुभ किसी भी सुख या दु:ख को नहीं करता है। योग के प्रवेश से समस्तसुख-दु:ख शक्य होते हैं।

इस प्रकार जानकर स्वयं कल्याणकारी बुद्धि को प्राप्त नहीं करने वाला परद्रव्य के नियमन करने का मन वाला मूर्ख स्वयं उपशम भाव को प्राप्त नहीं करता है।

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं जो कुणदि कम्मफलं।
सो तं पुणो वि बंधदि बीजं दुक्खस्स अट्ठविहं॥४२३॥

वेदंतो कम्मफलं मए कदं जो दु मुणदि कम्मफलं।
सो तं पुणो वि बंधदि बीजं दुक्खस्स अट्ठवियं॥४२४॥

वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो दु हवदि जो चेदा।
सो तं पुणो वि बंधदि बीजं दुक्खस्स अट्ठविहं॥४२५॥

अन्वय - *कम्मफलं वेदंतो जो कम्मफलं अप्पाणं कुणदि सो पुणो वि तं अट्ठविहं दुक्खस्स बीजं बंधदि।*

कम्मफलं वेदन्तो जो कम्मफलं मए कदं दु मुणदि सो पुणो वि तं अट्ठविहं दुक्खस्स बीजं बंधदि।

जो चेदा कम्मफलं वेदन्तो सुहिदो दुहिदो हवदि सो पुणो वि तं अट्ठविहं दुक्खस बीजं बंधदि।

अर्थ - कर्मफल को भोगता हुआ भी जो उस कर्मफल को अपना करता है (अपना लेता है-तन्मय हो जाता है) वह फिर उन आठ प्रकार के दुख के बीज को बांधता है।

कर्मफल को भोगता हुआ भी जो कर्मफल को मेरे द्वारा किया हुआ मानता है वह फिर उन आठ प्रकार के दुख के बीज को बांधता है।

जो जीव कर्मफल को वेदन करता हुआ (भोगता हुआ) सुखी दुखी होता है वह उस आठ प्रकार के दुख के बीज को बांधता है।

सत्थं णाणं ण हवदि जह्मा सत्थं ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं सत्थं अण्णं णाणं जिणा वेंति॥४२६॥

सद्दो णाणं ण हवदि जह्मा सद्दो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं सद्दो अण्णं णाणं जिणा वेंति॥४२७॥

रूवं णाणं ण हवदि जह्मा रूवं ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं रूवं अण्णं णाणं जिणा वेंति॥४२८॥

वण्णो णाणं ण हवदि जह्मा वण्णो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं वण्णं अण्णं णाणं जिणा वेंति॥४२९॥

गंधो णाणं ण हवदि जह्मा गंधो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं गंधं अण्णं णाणं जिणा वेंति॥४३०॥

ण हवदि रसो वि णाणं जह्मा दु रसो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं तु रसं अण्णं णाणं जिणा विंति॥४३१॥

फासो णाणं ण हवदि जह्मा फासो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं फासं अण्णं णाणं जिणा वेंति॥४३२॥

कम्मं णाणं ण हवदि जह्मा कम्मं ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं कम्मं अण्णं णाणं जिणा विंति॥४३३॥

धम्मत्थिओ ण णाणं हवदि जह्मा धम्मो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णं धम्मं अण्णं णाणं जिणा विंति ॥४३४॥

णाणमधम्मो ण हवदि जह्मा धम्मो ण याणदे किंचि।
तह्मा अण्णमधम्मं अण्णं णाणं जिणा विंति ॥४३५॥

कालोवि णत्थि णाणं जह्मा कालो ण याणदे किंचि।
तह्मा ण होदि कालो णाणं जह्मा अचेदणो णिच्चं ॥४३६॥

आयासंपि य ण णाणं हवदि जह्मा ण याणदे किंचि।
तह्मा आयासं अण्णं अण्णं णाणं जिणा विंति ॥४३७॥

अज्झवसाणं णाणं ण अज्झवसाणं अचेदणं जह्मा।
तह्मा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ॥४३८॥

जह्मा जाणदि णिच्चं तह्मा जीवो दु जाणगो णाणी।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेदव्वं ॥४३९॥

णाणं सम्मादिट्ठि दु संजमं सुत्तमंगपुव्वेसु।
धम्माधम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवेंति बुहा ॥४४०॥

अन्वय - सत्थं णाणं ण हवदि जह्मा सत्थं किंचि ण याणदे तह्मा णाणं अण्णं सत्थं अण्णं जिणा वेंति।

सद्दो णाणं ण हवदि जह्मा सद्दो किंचि ण याणदे तह्मा णाणं अण्णं सद्दं अण्णं जिणा वेंति।

रूवं णाणं ण हवदि जह्मा रूवं किंचि ण याणदे तह्मा णाणं अण्णं रूवं अण्णं जिणा वेंति।

वण्णो णाणं ण हवदि जह्मा वण्णो किंचि ण याणदे तह्मा णाणं अण्णं वण्णं अण्णं जिणा वेंति।

गंधो णाणं ण हवदि जह्मा गंधो किंचि ण याणदे तह्मा णाणं अण्णं गंधं अण्णं जिणा वेंति।

रसो दु णाणं ण हवदि जह्मा दु रसो किंचि ण याणदे तह्मा णाणं अण्णं रसं च अण्णं जिणा विंति।

फासो णाणं ण हवदि जह्मा फासो किंचि ण याणदे तह्मा णाणं अण्णं फासं अण्णं जिणा वेंति।

कम्मं णाणं ण हवदि जह्मा कम्मं किंचि ण याणदे तह्मा णाणं अण्णं कम्मं अण्णं जिणा विंति।

धम्मो णाणं ण जह्मा धम्मो किंचि ण याणदे तह्मा णाणं अण्णं धम्मं अण्णं जिणा विंति।

अधम्मो णाणं ण हवदि जह्मा धम्मो किंचि ण याणदे तह्मा णाणं अण्णं अधम्मं अण्णं जिणा विंति।

कालो णाणं णत्थि जह्मा कालो किंचि ण याणदे तह्मा णाणं ण होदि कालो णिच्चं अचेदणो।

आयासंपि य णाणं ण हवदि जह्मा किंचि ण याणदे तह्मा णाणं अण्णं आयासं अण्णं जिणा विंति।

जह्मा अज्झवसाणं अचेदणं णाणं ण अज्झवसाणं तह्मा णाणं अण्णं तहा अज्झवसाणं अण्ण।

जह्मा जीवो णिच्चं जाणदि तह्मा णाणी दु जाणगो जाणयादो णाणं च अव्वदिरित्तं मुणेदव्व।

वुहा सम्मादिट्ठि दु सुत्तंमंगपुव्वेसु णाणं संजमं धम्मा धम्मं च तहा पव्वज्जं अब्भुवेंति।

अर्थ - शास्त्र ज्ञान नहीं होता है। जिस कारण से शास्त्र कुछ भी नहीं जानता है उस कारण से ज्ञान अन्य है और शास्त्र अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं।

शब्द ज्ञान नहीं होता है। जिस कारण से शब्द कुछ भी नहीं जानता है उस कारण से ज्ञान अन्य है और शब्द अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं।

रूप ज्ञान नहीं है। जिस कारण से रूप कुछ भी नहीं जानता है उस कारण से ज्ञान अन्य है और रूप अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं।

वर्ण ज्ञान नहीं है। जिस कारण से वर्ण कुछ भी नहीं जानता है उस कारण से ज्ञान अन्य है और वर्ण अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं।

गन्ध ज्ञान नहीं है। जिस कारण से गन्ध कुछ भी नहीं जानता है उस कारण ज्ञान अन्य है और गंध अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं।

रस ज्ञान नहीं है। जिस कारण से रस कुछ भी नहीं जानता है उस कारण ज्ञान अन्य है, रस अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं।

स्पर्श ज्ञान नहीं है। जिस कारण से स्पर्श कुछ भी नहीं जानता है उस कारण ज्ञान अन्य है और स्पर्श अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं।

कर्म ज्ञान नहीं है। जिस कारण से कर्म कुछ भी नहीं जानता है उस कारण ज्ञान अन्य है और कर्म अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं।

धर्म द्रव्य ज्ञान नहीं है। जिस कारण से धर्म द्रव्य कु
भी नहीं जानता है उस कारण ज्ञान अन्य है और ध
द्रव्य अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं।

अधर्म द्रव्य ज्ञान नहीं है। जिस कारण से अधर्म द्र
कुछ भी नहीं जानता है उस कारण ज्ञान अन्य है औ
अधर्म द्रव्य अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं

काल द्रव्य ज्ञान नहीं है। जिस कारण से काल द्रव्य कु
भी नहीं जानता है उस कारण ज्ञान अन्य है और का
द्रव्य अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं।

आकाश द्रव्य ज्ञान नहीं है। जिस कारण से आकाश द्र
कुछ भी नहीं जानता है उस कारण ज्ञान अन्य है औ
आकाश द्रव्य अन्य है-ऐसा जिनेन्द्र भगवान जानते हैं

जिस कारण से नित्य, अचेतन अध्यवसान ज्ञान न
है उस कारण ज्ञान अन्य है तथा अध्यवसान अन्य है

जिस कारण से जीव नित्य जानता है, इस कारण ज्ञा
ज्ञायक तो है और ज्ञायकपने से ज्ञान को अपृथक् जान
चाहिये।

बोध को प्राप्त सम्यग्दृष्टि अंगपूर्वगत ज्ञान, संयम औ
धर्म-अधर्म तथा प्रवृज्या को स्वीकार करता है।

अत्ता जस्स अमुत्तो ण हु सो आहारगो हवदि एवं।
आहारो खलु मुत्तो जह्मा सो पोग्गलमओ दु॥४४१॥

णवि सक्कदि घित्तुं जे ण मुंचिदं चेव जं परं दव्वं।
सो को वि य तस्स गुणो पाउग्गिय विस्ससो चापि॥४४२॥

णो कम्म कम्माहारो लेप्पाहारो य कवलमाहारो।
ओजमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो मुत्तो॥४४३॥

तह्मा दु जो विसुद्धो चेदा सो णेव गिह्णदे किंचि।
णेव ह विमुंचइ किंचिवि जीवाजीवाण दव्वाणं॥४४४॥

अन्वय - *खलु आहारो पोग्गलमओ दु जह्मा सो मुत्तो। एवं जस्स अत्ता अमुत्तो सो हु ण आहारगो हवदि।*

जं परं दव्वं तस्स पाउग्गिय विस्ससो चापि गुणो ण चेव मुंचिदं सो कोवि घित्तुं णवि सक्कदि।

णो कम्म कम्माहारो लेप्पाहारो य कवलमाहारो ओजमणो वि य कमसो छव्विहो आहारो मुत्तो।

तम्हा दु जो विसुद्धो चेदा सो जीवाजीवाण दव्वाणं किंचि णेव गिह्णदे किंचिवि णेव विमुंचइ।

अर्थ - वस्तुतः आहार पुद्गलमय है जिससे वह मूर्त है। इस प्रकार जिसकी आत्मा अमूर्त है वह निश्चय ही आहारक नहीं होता है।

जो पर द्रव्य हैं उसके प्रायोगिक और स्वाभाविक गुण न ही मुंचित हैं जिससे उनको कोई भी धारण करने में समर्थ नहीं है।

नो कर्म, कर्माहार, लेप्पाहार, कवलाहार, ओज आहार और मनो आहार क्रमशः छह प्रकार का आहार मूर्त है।

इसलिए जो विशुद्ध आत्मा है वह जीव-अजीव द्रव्य को कुछ भी ग्रहण नहीं करता है और कुछ भी नहीं छोड़ता है।

पासंडिय लिंगाणि गिहलिंगाणि व बहुप्पयाराणि।
घेत्तूण वेंति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गोत्ति॥४४५॥

ण य होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेवंते॥४४६॥

अन्वय - *मूढा बहुप्पयाराणि पासंडिय लिंगाणि य गिहलिंगाणि इणं लिंगं मोक्खमग्गोत्ति घेत्तुं वेंति।*

जं लिंगं मोक्खमग्गो ण होदि लिंगं मुइत्तु देहणिम्ममा अरिहा दंसणणाणचरित्ताणि सेवंते।

अर्थ - मोही जीव अनेक प्रकार के पाखंडी लिंगों और गृही लिंगों को धारण कर यह लिंग मोक्षमार्ग है-ऐसा इन्हें धारण करने को कहते हैं।

जो लिंग मोक्षमार्ग नहीं है उन लिंगों को छोड़कर देह के प्रति निर्मम अरहंत दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना करते हैं।

ण वि एस मोक्खमग्गो पासंडिय गिहमयाणि लिंगाणि।
दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा वेंति॥४४७॥

अन्वय - *पासंडि य गिहमयाणि लिंगानि एस मोक्खमग्गो ण जिणा दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं वेंति।*

अर्थ - पाखंडी और गृहमय लिंग मोक्षमार्ग नहीं हैं। जिनेन्द्र भगवान दर्शन ज्ञान चारित्र को मोक्षमार्ग कहते हैं।

तह्मा लिंगे जहित्तु सागारणयारि येहि वा गहिदे।
दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंझ मोक्खपहे॥४४८॥

अन्वय - *तह्मा लिंगे जहित्तु सागारणयारि य एहिं वा गहिदे दंसणणाणचरित्ते मोक्खपहे अप्पाणं जुंझ।*

अर्थ - इसलिए उपर्युक्त लिंगों को छोड़कर सागार अथवा अनगारों के द्वारा गृहीत दर्शन ज्ञान चारित्र रूप मोक्षमार्ग में अपने को लगाओ।

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि चेदयहि झाहि तं चेव।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्ण दव्वेसु॥४४९॥

अन्वय - *अप्पाणं मोक्खपहे ठवेहि तं चेव झाहि चेदयहि तत्थेव णिच्चं विहर अण्णदव्वसु मा विहरसु।*

अर्थ - अपने को मोक्षमार्ग में स्थापित करो और उसी का ध्यान करो उसी में चित्त लगाओ उसी में नित्य विहार करो अन्य द्रव्यों में विहार मत करो।

पासंडीलिंगेसु य गिहत्थ लिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्तिं तेहिं ण णादं समयसारं॥४५०॥

अन्वय - *जो बहुप्पयारेसु पासंडीलिंगेसु व गिहत्थ लिंगेसु ममत्तिं कुव्वंति तेहिं समयसारं ण णादं।*

अर्थ - जो बहुत प्रकार के पाखंडी लिंगों और गृहप्य लिंगों में ममत्व करते हैं उन्होंने समय (आगम) के सार (अनेकान्त) को नहीं जाना।

ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणदि मोक्खपहे।
णिच्छयणओ दु णेच्छदि मोक्खपहे सव्वलिंगाणि॥४५१॥

अन्वय - *पुण ववहारिओ णओ मोक्खपहे दोण्णि वि लिंगाणि भणदि। णिच्छय णओ दु मोक्खपहे सव्वलिंगाणि णिच्छदि।*

अर्थ - व्यवहार नय मोक्ष पथ में दोनों लिंगों (सागर-अनगार) को कहता है। किन्तु निश्चय नय मोक्ष पथ में पाखण्डी आदि सब लिंगों की इच्छा नहीं करता है।

जो समयपाहुडमिणं पडिदूण य अत्थतच्चदो णादुं।
अत्थे ठाहिदि चेदा सो पावदि उत्तमं सोक्खं॥४५२॥

अन्वय - *जो चेदा इणं समयपाहुडं पडिदूण य तच्चदो अत्थ णादुं अत्थे ठाहिदि सो उत्तमं सोक्खं पावदि।*

अर्थ - जो जीव इस समय पाहुड को पढ़कर और तत्वत: (अच्छी तरह से) अर्थ (तात्पर्य/वाच्य) को जानकर प्रयोजन में ठहरता है वह उत्तम सुख को प्राप्त करता है।

प्रतिक्रमण सभी नयों से अमृतकुम्भ है

जिन शासन में जीवों को दोषों से दूर कर शुद्धता प्राप्त करने का विधिपरक उपदेश है। जिनेन्द्र देव दोषों से मुक्त होकर शुद्धता को प्राप्त है : इससे उनके वचन प्रमाण हैं और वह उपदेश आगम संज्ञा को प्राप्त है। इस प्रकार आगम केवलियों, श्रुत केवलियों, गणधरों और आगम के ज्ञाता ज्ञानियों के द्वारा परम्परित हुआ है। उसमें विस्तारपूर्वक छह आवश्यक नित्य करने को कहे गए हैं। वे सभी आवश्यक कर्मों की निर्जरा करने वाले और मुक्ति के मार्ग हैं। इस सम्बन्ध में नियमसार की निम्न गाथा में आचार्य कुन्दकुन्द स्पष्ट रूप से कहते हैं -

जो ण हवदि अण्णवसो तस्स दु कम्मं भणंति आवासं।
कम्म विणासण जोगो णिव्वुदि मग्गोत्ति पिज्जुत्तो॥

अर्थात् जो अन्य के वश में नहीं होता है उसके कर्म को आवश्यक कहा गया है। वह कर्म का नाश करने में योग्य है। इस प्रकार उसे निर्वाण का मार्ग कहा गया है।

इस प्रकार षट् आवश्यकों को निर्वाण मार्ग की संज्ञा प्राप्त है। उन आवश्यकों में एक प्रतिक्रमण भी है। वह प्रतिक्रमण पूर्व में किए हुए दोषों से निवृति कराता है। जैसा कि प्रतिपादित है -

''जीवे प्रमादजनिता प्रचुरा प्रदोषाः परमात् प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति।'' -श्रमणचर्या

अर्थात् जीव में प्रमाद जनित प्रचुर दोष हैं : वे प्रतिक्रमण से प्रलय को प्राप्त होते हैं।

दव्वे खेते काले भावे य कदावराह सोह णयं।
णिंदण गरहणजुत्तो मणवचकायेण पडिक्कमणं॥ -श्रमणचर्या

अर्थात् निन्दा-गरहा पूर्वक (युक्त) प्रतिक्रमण द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में मन, वचन, काय से किए हुए दोषों का शोधन करने वाला है।

कम्मं जं पुव्वकदं सुहासुह अणेय विल्थर विसेसं।
ततो णियतदे अप्पयं सु जो सो पडिक्कमणं॥

अर्थात् पूर्व में किए हुए अनेक विस्तार वाले शुभ-अशुभ कर्मों से जो निवृत्ति कराता है वह प्रतिक्रमण है।

इस प्रकार जैनाचार में प्रतिक्रमण दोषों को दूर करने का मुख्य साधन है। इसमें पूर्वकृत कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा संवर पूर्वक हो तब ही वह निर्जरा मान्य है। इस प्रकार संवर रूप समस्त व्रत, संयम, शील, तप, आराधना आदि प्रतिक्रमण की कोटि में आ जाते हैं, क्योंकि वे जीव को प्रमाद जनित दोषों से दूर रखते हैं। यह निम्न आर्ष वचनों स्पष्ट है -

मोत्तूण अणायारं आयारे जो कुणदि थिर भावं।
सो पडिक्कमणं उच्चइ पडिक्कमणमओ हवे जम्हा॥

-नियमसार गाथा ८५

- जो अनाचार को छोड़कर आचार में स्थिर भाव करता आचार को प्राप्त करता हूं वह प्रतिक्रमण है। उससे प्रतिक्रमणमय होता है।

अणाचारं पणिवज्जामि।
आचारं उपसंपज्जामि॥ -प्रतिक्रमण दण्डक

अनाचार को पूर्ण रूप से छोड़ता हूं और आचार को प्राप्त करता हूँ।

चत्ता अगुत्तिभावं तिगुत्तिगुत्तो हवेइ जो साहू।
सो पडिक्कमण उच्चई पडिकमणमओ हवे जम्हा॥ -नियमसार

जो साधु अगुप्ति भाव को छोड़ कर त्रिगुप्ति से रक्षित है वह प्रतिक्रमण है, उससे वह प्रतिक्रमणमय होता है।

अगुत्तिं परिवज्जामि।
गुत्तिं उपसंपज्जामि॥ - प्रतिक्रमण दण्डक

अगुप्ति को छोड़ता हूँ और गुप्ति को प्राप्त करता हूँ।

मोत्तूण अट्ठरुद्दं झाणं जो झाहि धम्मसुक्कं वा।
सो पडिक्कमणं उच्चई जिणवरणिद्दिट्ठ सुतेसु॥ - नियमसार ८९

जो आर्त-रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म-शुक्ल ध्यान को ध्याता है उसे जिनवरों से निर्देशित सूत्र में प्रतिक्रमण कहते हैं।

अट्ठं रूद्दं झाणं वोस्सरामि।
धम्मसुक्कज्झाणं अब्भुट्ठेमि॥ - प्रतिक्रमण दण्डक

आर्त-रौद्र ध्यान को छोड़ता हूँ धर्म-शुक्ल ध्यान में स्थिर होता हूँ।

उम्मग्गं परिचत्ता जिणमग्गे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चई पडिक्कमणमओ हवे जम्हा॥-नियमसार ८६

जो उन्मार्ग (मिथ्या दर्शन, ज्ञान, चारित्र) को छोड़कर जिनमार्ग (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र) में स्थिर भाव को करता है वह प्रतिक्रमण है, उससे वह प्रतिक्रमण युक्त हो जाता है।

उम्मग्गं परिवज्जामि।
जिणम्मं उपसंपज्जामि॥ - प्रतिक्रमण दण्डक

उन्मार्ग को छोड़ता हूं और सम्यक् रूप से जिनमार्ग को प्राप्त करता हूं।

मिच्छत्त पहुडि भावा पुव्वंजीवेण भाविया सुइरं।
सम्मत्त पहुडि भावा अभाविया होंति जीवेण॥ -नियमसार ९०

मिथ्यात्व प्रभृति भावों को जीव ने अनन्तकाल से भाया है और सम्यक्त्व प्रभृति भाव जीव से अभावित हैं।

अभावियं भावेमि।
भावियं ण भावेमि॥ - प्रतिक्रमण दण्डक

अभावित को भाता हूँ और भावित को नहीं भाता हूँ।

मिच्छा दंसण णाणं चरित्तं चइऊण णिरवसेसेण।
सम्मत्त णाण चरणं जो भावइ सो पडिक्कमणं॥ -नियमसार ९१

मिथ्या दर्शन, ज्ञान चरित्र को सम्पूर्ण रूप से छोड़ कर जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र को भाता है वह प्रतिक्रमण है।

मिच्छा दंसण मिच्छाणाण मिच्छा चरित्तं परिणरोमि।
सम्मणाण दंसण सम्म चारित्तं व रोचेमितजं जिणवरेहिं पण्णत्तं॥
- प्रतिक्रमण दण्डक

मिथ्या, दर्शन, ज्ञान चारित्र को पूर्णरूप से छोड़ता हूँ। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो जिनवरों से प्रज्ञप्त है में रुचि रखता हूँ।

उपर्युक्त उल्लेखों के अनुसार सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, गुप्ति, धर्म-शुक्ल ध्यान, आत्मध्यान, आराधना आदि को प्रतिक्रमण कहा है। इसके अतिरिक्त अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग 5, पृष्ठ 262 पर निम्न गाथा उपलब्ध है जिसमें प्रतिक्रमण आठ प्रकार का कहा गया है -

पडिकमणं पडिसरणं पडिहरणं धारणा णियत्ती य।
णिंदा गरिहा सोही पडिकमणं अट्टहा होइ॥

परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार का प्रारम्भ करते समय ही आचार्य बंधभाव से विरक्त करने वाले और आत्मभाव को दृढ़ करने वाले प्रतिक्रमण को करने की प्रतिज्ञा करते हैं और उस प्रतिक्रमण के पात्र कौन हैं? इसका भी प्रतिपादन करते हैं -

एसो पडिक्कमण विहि पण्णत्तो जिणवरेहिं सव्वेहि।
संजम तवट्ठियाणं णिग्गांथाणं महीसिणं॥

इस प्रकार यह प्रतिक्रमण विधि संयम-तप में स्थित निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिए समस्त जिनवरों के द्वारा प्ररूपित हैं।

इस प्रकार जिनवरों का उपदेश दोषों से दूर करने वाला होने से मूलत: प्रतिक्रमण मय है। इसलिए अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के धर्म को "सपडिकम्मो धम्मो"-प्रतिक्रमण सहित धर्म कहा है। इससे रहित साधु महावीर का अनुयायी नहीं हो सकता बारस अणुपेक्खा की निम्नलिखित गाथा में कहा है -

रतिदियं पडिकमणं पच्चक्खाणं समादि सामइयं।
आलोयणं पकुव्वदि जदि विज्जदि अप्पणो सती॥

इसीलिए जिनवाणी में उपदेश है कि प्रतिक्रमण इत्यादि अपनी शक्ति के अनुसार रात दिन निरन्तर करते रहना चाहिये।

अभी अंतिम तीर्थंकर महावीर द्वारा प्ररूपित धर्म आगम का शासन है। इस जिन-शासन में जितने भी मूल ग्रंथ है उनमें दोषों को दूर कर शुद्धता को प्राप्त कराने वाले उपायों को अमृत-कुम्भ माना है। अत: प्रतिक्रमण भी धर्म का मूल व अमृत-कुम्भ है। इस के विपरीत समय-पाहुड की निम्न दो गाथाएं विचारणीय हैं-

पडिकमणं पडिसरंण पडिहारो धारणा णियत्ती य।
णिंदा गरूहा सोही अट्ठविहो हो हि विसकुंभो॥
अपडिकमणं अपडिसरण अपडिहारो अधारणा चेव।
अणियत्ति य अणिंदा अगरुहा सोही अमय कुंभो॥

अर्थात् प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृति, निंदा, गर्हा और शुद्धि यह आठ प्रकार का विषकुम्भ है और अप्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, अधारणा, अनिवृति, अनिंदा, अगर्हा और अशुद्धि यह आठ प्रकार का अमृत कुम्भ है।

उपर्युक्त गाथा द्वय में प्रतिक्रमण आदि को विषकुम्भ और अप्रतिक्रमण आदि को अमृतकुम्भ कहा गया है। जबकि सभी जिनेन्द्रों ने पाप को विषकुम्भ और पापों से छुड़ाने वाले को अमृतकुम्भ कहा है। प्रतिक्रमण-

अप्रतिक्रमण सम्बन्धी इन गाथाओं के टीकाकारों ने उनका अर्थ स्पष्ट करते हुए प्रतिक्रमण को द्रव्य प्रतिक्रमण और स्वर्ग का दाता मान कर विषकुम्भ तथा उससे विलक्षण अप्रतिक्रमण को अमृतकुम्भ प्रतिपादित किया है जबकि निंदण-गर्हण युक्त जो प्रतिक्रमण है उसे भाव-प्रतिक्रमण कहा गया है। यह तथ्य मूलाचार की निम्न गाथा से स्पष्ट है-

आलोचणनिदंण गरहणादि अब्भुट्ठियाओ अकरणाय।
तं पुणभाव पडिक्कमण सेसं दव्व दो भणियं॥ - ६२५

अर्थात् आत्मा को स्थिर करने वाले होने से आलोचना, निंदण, गरहण आदि भाव प्रतिक्रमण हैं और अन्य समस्त द्रव्य प्रतिक्रमण हैं।

इस प्रकार समय पाहुड की उपर्युक्त गाथा द्वय की टीका भी विचारणीय है। कहीं कहीं अनुवर्ती टीकाकारों ने प्रतिक्रमण को कर्तव्य बुद्धि होने से निषेध किया है जबकि उपर्युक्त भाव प्रतिक्रमण कर्मो का कर्ता नहीं है और संवर व निर्जरा रूप होने से कर्म के करने वाले का अभाव है, जैसा कि निम्नलिखित गाथा से स्पष्ट है -

जाव ण पच्चक्खाणं अपडिकमण च दव्व भावाणं।
कुव्वदि आदा ताव दु कत्ता सो होदि णादव्वो।।

अर्थात् जब तक जीव द्रव्य-भाव रूप अप्रतिक्रमण और अप्रत्याख्यान करता है तब तक वह कर्ता होता है - ऐसा जानना चाहिये।

अत: आगम के आलोक में निंदण-गरहण युक्त प्रतिक्रमण को कर्तव्य भाव नहीं कह सकते। समय पाहुड में स्थान-स्थान पर कर्म के कर्ता को अज्ञानी कहा गया है और ज्ञान के कर्ता को ज्ञानी कहा गया है। अत: यह प्रतिक्रमण विधि भगवान जिनेन्द्र देव के द्वारा ज्ञानियों के लिए कही गई है, अत: यह ज्ञान भाव है। इस प्रकार यह विषकुम्भ नहीं होना चाहिये।

प्रतिक्रमण दोषों की निवृत्ति के लिए प्रतिपादित है तथा व्रत, समिति, ध्यान (धर्म-शुक्ल ध्यान) आदि समस्त दोषों का निवारण करने से प्रतिक्रमण के विविध रूप हैं। उन व्रत, नियम आदि में जो दोष लगते है उन्हें भी प्रतिक्रमण ही दूर करता है। (अप्पडिकंतं पडिक्कमामि)

अत: सम्पूर्ण रूप से दोषों का वारण करने वाला यह प्रतिक्रमण कैसे विषकुम्भ हो सकता है? यह विचारणीय है। जिसका मूल स्वभाव ही दोषों का निवारण करना है वह प्रतिक्रमण कैसे विषकुम्भ हो सकता है?

प्रतिक्रमण में कर्मों के अकर्तृत्व का भाव है और वह अमृतकुम्भ है। इसके विपरीत अप्रतिक्रमण कर्मों का कर्ता है और वह विषकुम्भ है जबकि गाथा में इसके विपरीत कहा है। सम्यग्दृष्टि के प्रतिक्रमण निर्जरा रूप है। कदाचित् किसी शुभोपयोगी श्रमण के करुणा भाव से पुण्यबंध हो जाये तो वह तीर्थंकर प्रकृति इत्यादि रूप होता है जो निर्वाण का हेतु है और परम्परा से अमृतमयी मोक्ष को प्राप्त कराता है। इस प्रकार प्रतिक्रमण को साक्षात् व परम्परा से अमृतकुम्भ ही जानना चाहिये। यह प्रतिक्रमण इतना उपयोगी और महत्वपूर्ण है कि यदि कोई मिथ्यादृष्टि भी इसके धारण से अपने पापों से निवृति पाकर व्रत-समिति का आचरण करता हुआ मन्द कषायी होता है तो कदाचित् वह अपने पुण्य के प्रभाव से समवसरण में जा कर सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकता है और अन्तत: मोक्ष-मार्ग में प्रवृत्त हो सकता है।

इस दृष्टि को रखते हुए समय पाहुड़ मोक्षाधिकार में 'थेयाई अवराहे' आदि गाथाओं में अव्रतभाव को बंधन का मूलक बतलाते हुए उससे वह वस होता है और इसके विपरीत संवर भाव विशुद्धि मूलक होने से वह अवस होता है अत: अवस भाव संवर विशुद्धि रूप है और उसी से कर्मों की निर्जरा होकर जीव मोक्ष को प्राप्त होता है।

दैवयोग से समय पाहुड के मूलपाठ का अध्ययन करते समय हमें इन गाथाओं के स्थान पर श्रवणवेलगोल स्थित ताड़पत्रीय प्रति के निम्न चार गाथाएं प्राप्त हुई हैं-

पडिकमणं पडिसरणं पडिहारो णियत्तीय य।
णिंदा गरुहा सोही अट्ठविहो अमयकुंभो दु॥
अघडिकमणं अघडिसरणं अघरिहारो अधारणा चेव।
अणियत्ति य अणिंदा गरुहा सोही अट्ठविहो विसकुंभो॥
पडिकमणं पडिसरणं पडिहारो धारणा णियत्ती य।
णिंदा गरुहा सोही अट्ठविणा णि-सविसकुंभो॥
अघडिकमणं अघडिसरणं अघडिहारो अधारणा चेव।
अणियत्ति य अणिंदा अरुहा सोही अवदकुम्भो॥

प्रथम दो गाथाओं को समय पाहुड़ के दोनों टीकाकारों ने उद्धृत किया है। उनको ये गाथाएं परम्परा से प्राप्त थी तथा इसके बाद की दोनों गाथाएं परम्परित और पूर्वापर दोष रहित है। अत: इन गाथाओं के स्थान पर इन गाथाओं का ही पाठ करना आगम सम्मत है, जैसा कि भगवती आराधना की निम्न गाथाओं से स्पष्ट है-

सम्मादिट्ठी जीवो उवइट्ठ पवयणं तु सद्दहइ।
सद्हइ असब्भावं अयाणमाणो गुरु णियोगा॥ 32
सुत्ता दो तं सम्मं दरिसिज्जं तं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवदि मिच्छादिट्ठि जीवो तदा पहुदि॥ 33

अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान करता है और अज्ञान भाव से नही जानता हुआ। असद्भाव का भी गुरु के नियोग से श्रद्धान करता है जब वह सूत्र से अच्छी तरह से दरशाए हुए उस सद्भाव का श्रद्धान नहीं करता है तब वह उसी समय में मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

टीकाकारों ने अप्रतिक्रमण को अमृत कुम्भ कहा है जबकि बन्ध अधिकार की अंतिम गाथा में राग, द्वेष, कषाय रहित जीव को अप्रतिक्रमण का अकारगो अकर्त्ता कहा है। अत: राग-द्वेष-कषाय रहित जीव प्रतिक्रमणमय होने से अमृतकुम्भ है और प्रतिक्रमण का कर्त्ता है।

इसी अधिकार में चैतन्यभाव को प्राप्त करने का साधन रूप प्रज्ञा का वर्णन आया है, अत: वह प्रज्ञा ही अप्रतिक्रमण व प्रतिक्रमण से विलक्षण अभेद रत्नत्रय रूप होना चाहिये। वह प्रज्ञा ही जीव को केवल ज्ञान तक की यात्रा कराती है-ऐसा उन गाथाओं से प्रतिभासित होता है। श्रमणाचार में समस्त जिनवरों को नमस्कार किया है। उसमें प्रज्ञा श्रमण को भी नमस्कार किया है जबकि अप्रतिक्रमण श्रमण को नहीं किया है। गाथा में प्रतिक्रमण के साथ शुद्धि पद होने से वह अमय कुम्भ है और अप्रतिक्रमण के साथ अशुद्धि पद होने से विषकुम्भ होना चाहिये।

श्रुत केवली ने मोक्षाधिकार में बन्ध और आत्मा को जान कर प्रज्ञा द्वारा छेदने की प्रेरणा दी है और श्रमणाचार में सर्व श्रमणों को नमस्कार किया है। उसमें प्रज्ञा श्रमणों को भी नमस्कार किया है। इसके विपरीत प्रतिक्रमण/अप्रतिक्रमण से विलक्षण अप्रतिक्रमण श्रमण को कहीं पर भी नमस्कार नहीं किया है। अत: टीकाकारो द्वारा प्रतिपादित प्रति क्रमण/अप्रतिक्रमण से विलक्षण अप्रतिक्रमण कौन सा है-यह चिन्तनीय है।

●●

द्रव्यार्थिक व्यवहारनय अभूतार्थ क्यों?

समय पाहुड की प्राचीन प्रतियों में ग्यारहवीं गाथा का मूल पाठ निम्न प्रकार से मिलता है-

ववहारो भूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठि हवइ जीवो॥

आचार्यों ने इसकी संस्कृत छाया निम्न प्रकार से की है-

व्यवहारोऽभूतार्थो दर्शितस्तु शुद्धनयः।
भूतार्थमाश्रितः खलु सम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः॥

श्री अमृतचन्द्राचार्य ने आत्मख्याति टीका में उपर्युक्त संस्कृत छाया के आधार पर टीका करते हुए लिखा है-

"व्यवहार नयो हि सर्व एवाभूतार्थत्वादभूतार्थ प्रद्योतयति शुद्धनय एक एव भूतार्थत्वात् भूतमर्थं प्रद्योतयति।"

श्री अमृतचन्द्राचार्य द्वारा उपर्युक्त गाथा की टीका करते हुए अपनी आत्मख्याति टीका के व्यवहारनय को सर्वथा अभूतार्थ/असत्यार्थ कहा है और केवल शुद्ध नय को भूतार्थ कहा है। यह कथन उपर्युक्त संस्कृत छाया के अनुकूल और मूल गाथा के प्रतिकूल जान पड़ता है।

समय पाहुड की किसी भी गाथा में तथा कुन्दकुन्दाचार्य की किसी भी कृति में व्यवहार को असत्यार्थ नहीं कहा गया है और उस नय को जिनोपदिष्ट बतलाया गया है। इससे प्रतिफलित होता है कि व्यवहार नय जिनोपदिष्ट है और भगवान जिनेन्द्र देव के द्वारा कथित होने से सत्यार्थ है। भगवान जिनेन्द्र देव राग, द्वेष और मोह से रहित होने से कभी भी असत्यार्थ का कथन नहीं करते हैं[1] ? और नय के दृष्टा भाषा समिति का परिपालन करते हुए पैशून्य (चुगली), हास्य, कर्कश, परनिन्दा और

आत्म प्रशंसा रूप वचन को छोड़ कर स्व-पर हितकारी वचन को बोलने वाले होते हैं, अत: वे भी असत्यार्थ का कथन नहीं करते हैं[2]।

अत: जिनोपदिष्ट सम्पूर्ण दर्शन स्याद्वाद से परिपूरित है और स्याद्वाद की पूर्ति के लिए एकान्त का विरोध होना चाहिये। इसके विपरीत टीकाकार ने एकान्त का पक्ष लेते हुए व्यवहार को सर्वथा असत्यार्थ और शुद्ध नय को सर्वथा सत्यार्थ कह कर एकान्त की पुष्टि की है जो आगम विरुद्ध है। आचार्य कुन्दकुन्द ने पूरे समय पाहुड में जहां कहीं भी व्यवहार नय का कथन किया है वहीं निश्चय नय का भी कथन करके दोनों को समान रूप से ग्रहण किया है।

नयचक्र में बतलाया गया है कि नय के बिना मनुष्य को स्याद्वाद का बोध नहीं हो सकता। इसलिए जो एकान्त का विरोध करना चाहता है उसे नय को अवश्य जानना चाहिये[3]।

यह सुस्पष्ट है कि सम्पूर्ण जैन दर्शन और समस्त जैन सिद्धान्त नयों पर आधारित है। नय के विषय में कहा गया है कि श्रुतज्ञान का आश्रय लिए हुए ज्ञानी का जो विकल्प वस्तु के अंश को ग्रहण करता है उसे नय कहते है[4]। अत: वस्तु सत् है चाहे वह किसी भी दशा में हो, उसका ज्ञान करानेवाला नय सत्यार्थ ही होगा।

आगमानुसार मूल नय सात होते है-नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरुढ़ तथा एवंभूत[5]। इनमें प्रथम तीन नय (नैगम, संग्रह, व्यवहार) द्रव्यार्थिक नय हैं और शेष चार नय पर्यायार्थिक हैं[6]। इस प्रकार नय व्यवहार नय मूलनय है और द्रव्यार्थिक भी है, अत: वह असत्यार्थ कैसे हो सकता है? इसके विपरीत शुद्ध नय एवं निश्चय नय मूल नहीं है। ये नय किस प्रकार नय की शाखा या भेद हैं-यह विचारणीय है।

इस विषय में एक और ध्यान देने योग्य बात है कि स्वयं व्यवहार नय भी दो प्रकार का है-'अशुद्ध व्यवहार और शुद्ध व्यवहार।' इससे स्पष्टत:

ध्वनित होता है कि शुद्ध नय जिसे आचार्य कुन्दकुन्द ने समय पाहुड की ग्यारहवीं गाथा में कहा है (देसिदो दु सुद्धणओ) व्यवहार का ही भेद है, वह व्यवहार से अतिरिक्त नहीं है और असत्यार्थ भी नहीं हैं। इसी प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द ने स्वयं कहा है कि व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश करना अशक्य है[8]। अतः सम्पूर्ण जिनोपदेश व्यवहारमय है। उसको असत्यार्थ कहना क्या जिनवाणी पर लांछन नहीं है?

इस सम्बन्ध में आचार्य कुन्दकुन्द की निम्न गाथा भी दृष्टव्य है-

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।

अर्थात् ज्ञानी को दर्शन, ज्ञान चरित्र का उपदेश व्यवहार से दिया जाता है। साधु के द्वारा दर्शन, ज्ञान और चरित्र का नित्य सेवन किया जाना चाहिये जैसा कि समय पाहुड की गाथा 16 में प्रतिपादित है[9]।

व्यवहार से प्रतिपादित दर्शन, ज्ञान और चरित्र को वचन का सार निरूपति करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द नियमसार के जीवाधिकार में कहते हैं कि नियम से जो करने योग्य है वह नियम है और ऐसा नियम ज्ञान, दर्शन और चरित्र है। इससे विपरीत अर्थात् मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का परिहार करने के लिए 'सार' यह वचन कहा गया है[10]।

नियम का फल बतलाते हुए आचार्य कहते हैं कि नियम अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र मोक्ष का उपाय है और उसका फल परम निर्वाण[11] है।

इस प्रकार मोक्षमार्गरूप सम्यग्यदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र जो व्यवहार नयोपदिष्ट हैं और उन्हीं को जान कर योगी सुख को प्राप्त करता है और इन्हीं की साधना करके मलपुंज (कर्म समूह) का क्षय करता है[12]।

यहां विचारणीय यह है कि उक्त गाथा 11 की जो संस्कृत छाया की गई है उसमें 'भूदत्थो' को 'अभूदत्थो' कैसे कर दिया गया? और अमृतचन्द्र जैसे मेधावी आचार्य ने उसे स्वीकार करते हुए तदनुसार ही अपनी टीका में उसके अर्थ को कैसे अभिव्यक्त किया? जिससे अर्थ का अनर्थ हो गया और इस प्रकार विपरीतार्थ हो जाने पर परवर्ती समय में व्रत, तप, समिति, गुप्ति आदि को व्यवहार मान कर उनको महत्वहीन कर दिया गया जिससे हमारे चारित्र पर प्रबल कुठाराघात हुआ है। और तो क्या कहें? परवर्ती हिन्दी व्याख्याकारों ने 'भरतजी घर में वैरागी' कह कर और घर में वैरागी होने का उपदेश देकर वैराग्य के उत्पन्न होने पर जैनधर्मोपदिष्ट चारित्र की परम्परा गृहत्याग की अनिवार्यता ही समाप्त कर दी।

अदृश्यमान निश्चय चारित्र की दुहाई देने वाले आध्यात्म पोषक श्रावक बन्धुओं ने निश्चय-व्यवहार चारित्र की युगपत् घोषणा करते हुए भी अव्रती श्रावकों का मन्दिर आदि धार्मिक व सार्वजनिक (धर्मशाला आदि) स्थानों की बजाय सम्पन्न श्रावकों के यहां निवास करना रूढ़ हो गया है। इससे प्रायः हमारे चतुर्विध संघ में शिथिलाचार को बढ़ावा मिला है।

आचार्यो, विचारकों एवं विद्वानों से मेरी विनम्र विनती है कि इस विषय में गम्भीरतापूर्वक चिन्तन और मनन करें तथा समाज में बढ़ रहे शिथिलाचार को रोकने का प्रयास करें। यह मेरा प्रथम प्रयास है। इसमें यदि कोई त्रुटि हुई हो तो मैं उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूं। मेरी मूल भावना यही है कि आगम के मूलपाठ की संस्कृत छाया से जो भ्रान्ति उत्पन्न हुई है उसका निराकरण हो और व्यवहार नय को तथ्य मानकर तदनुरूप चारित्र का अनुपालन किया जाय, ताकि "**आचारो प्रथमः धर्मः**" की पुष्टि हो सके।

सन्दर्भ

1. रागेण व दोसेण व मोहेण व मोसभास परिणामं।
   जो पजहदि साहु सया विदियवयं होइ तस्सेव॥
   - नियमसार, गाथा 57.

2. पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं।
   परिचता स परहिदं भासा समिदि वदंतस्स॥
   - नियमसार, गाथा 62.

3. जह्मा णएण विणा होइ ण णरस्स सियवाय पडिवती।
   तह्मा सो बोहव्वो एयंतं हंतुकामेण॥
   - नयचक्र, गाथा 174.

4. जं णाणीण वियप्पं सुवासयं वत्थुअंससंगहंण।
   तं इह णयं पउत्तं णाणी तेण णाणेण॥
   - नयचक्र, गाथा 173.

5. नेगम-संगह-ववहार उज्जुसूए चेव होई बोधव्वा।
   सद्दे य समभिरूढे एवंभूए य मूलनया॥
   - समणसुत्त, नयसूत्र, गाथा 9.

6. पढमतिया दव्वत्थी पज्जयगाही य इयर जे भणिया।
   ते चदुअत्थ पहाणा सद्द पहाणा हु तिण्णिया॥
   - समणसुत्त, नयसूत्र, गाथा 10.

7. जं संगहेण गहियं भेयई अत्थं असुद्ध सुद्धं वा।
   सो ववहारो दुविहो असुद्धशुद्धत्थभेयकारो॥
   - समणसुत्त, नयसूत्र, गाथा 16.

8. जहणवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं विणाउ गाहेउं।
   तह ववहारेण विणा परमत्थुएवसणमसक्कं॥
   - समय पाहुड, गाथा 8

9. दंसण णाणचरित्ताणी सेविदव्वणि साहुणा णिच्चं
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो ।।

- समय पाहुड, गाथा 16

10. णियमेण य जं कज्जं तण्णियमं णाणदंसणचरित्त ।
विवरीय परिहरत्थं भणिद खलु सारमिदि वयणं ।।

- समय पाहुड, गाथा 3

11. णियमं मोक्ख उवायो तस्स फलं हवदि परमणिव्वाणं ।
एदेसिं तिण्हं पि य पत्तेयपरूवणा होई ।।

- नियमसार, जीवाधिकार, गाथा 4

12. जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो ।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं ।।

- सुत्त पाहुड, गाथा 6

●●
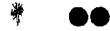
व्यवहारनय अभूतार्थ नहीं

ववहारो भूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठि हवइ जीवो॥

इस गाथा की संस्कृत छाया आचार्यो द्वारा निम्न प्रकार से की है-

व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो दर्शितस्तु शुद्धनयः।
भूतार्थमाश्रितः खलु सम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः॥

श्री अमृतचन्द्राचार्य ने इसकी उत्तरवर्ती बारहवीं गाथा ''सुद्धो सुद्धदेसो'' की टीका में उक्तंच करके निम्नलिखित प्रामाणिक गाथा भी उद्धृत की है-

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहार णिच्छए मुयह।
एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥

- अर्थात् जिनमत में दीक्षित होना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय को मत छोड़ो। क्योंकि व्यवहार के बिना तीर्थ क्षीण होता है और निश्चय के बिना तत्त्व क्षीण होता है।

इसी भांति यही बात श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने नियमसार में जिन-शासन की व्याख्या करते हुए निम्न प्रकार से कही है-

मग्गो मग्गफलं ति य दुविहं जिणसासणे समक्खादो।
मग्गो मोक्खउवायो तस्स फलं होइ णिव्वाणं॥

अर्थात् जिन शासन में मार्ग और मार्गफल इस तरह दो प्रकार का कथन किया गया है। इसमें मोक्ष का उपाय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र मार्ग है और निर्वाण की प्राप्ति होना उनका (मार्ग का) फल है।

इस भांति इस गाथा में वर्णित मार्ग और उपर्युक्त गाथा में कथित तीर्थ दोनों एकार्थवाची हैं और जिन-शासन के अंग हैं और जिन-शासन को कोई भी अंग अभूतार्थ नहीं है। क्योंकि आगम उनका प्रतिपादन करता है और वह आगम साधु का चक्षु होता है। जैसा कि प्रवचनसार की निम्न गाथा से स्पष्ट है-

आगम चक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।
देवा य ओहि चक्खू सिद्धा पुण सव्वदोचक्खू॥

- चारित्राधिकार, गाथा-34

अर्थात् मुनि आगम रूपी नेत्रों के धारक है, संसार के समस्त प्राणी इन्द्रिय रूपी चक्षुओं से सहित हैं, देव अवधिज्ञान रूपी नेत्र से युक्त हैं और अष्टकर्म रहित सिद्ध भगवान सब ओर से चक्षु वाले हैं अर्थात् केवलज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों को युगपत् जानने वाले है।

यदि साधु एक नय को पकड़ कर चलेगा तो उसकी प्रवृज्या नहीं है और आगम से हीन साधु आत्मा और पर को नहीं जानता है, जैसा कि श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रवचनसार की निम्नलिखित गाथा में कहा है-

आगमहीणो समणो णेवप्पाण परं वियाणादि।
अविजाणंतोअट्ठे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू॥

- चारित्राधिकार, गाथा-33

आगम से हीन मुनि न आत्मा को जानता है और न आत्मा से भिन्न शरीर आदि पर पदार्थों को। स्व-पर पदार्थों को नहीं जानने वाला भिक्षु कर्मों का क्षय कैसे कर सकता है?

अत: 11वीं गाथा का उपर्युक्त अर्थ पक्षग्राही होने से विवादास्पद ही रहा है। आचार्य जयसेन ने भी 11वीं गाथा के उपर्युक्त अर्थ को स्वीकार न करते हुए इसके अर्थ का दूसरा विकल्प निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया-

"द्वितीय व्याख्यानेन पुनः **ववहारो अभूदत्थो** ववहारोऽभूदत्थो **भूदत्थो** भूतार्थश्च **देसिदो** देशितः कथितः न केवलं व्यवहारो देशितः **सुद्धणओ** शुद्धनिश्चयनयोपि। दु शब्दादयं शुद्ध निश्चयनयोपीति व्याख्यानेन भूताभूतार्थ भेदेन व्यवहारोपिद्विधा, शुद्धनिश्चयाशुद्धनिश्चयभेदेन निश्चय नयोपि द्विधा इति नय चतुष्टयम्।"

इस प्रकार इस गाथा का अर्थ प्रारम्भ से ही विवादस्पद रहा है और आचार्य अमृतचन्द्र के परवर्ती टीकाकारों, व्याख्याकारों एवं हिन्दी भाष्यकर्त्ताओं ने भी अनेक प्रकार की नय विक्षाओं को न समझकर उसी का अनुकरण करते हुए इसको प्रमाण रूप में प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु अप्रमाण रूप यह अर्थ अद्यावधि विवादस्पद ही बना रहा जिसका निराकरण चारित्र के पालन/अभिवृद्धि हेतु अत्यावश्यक है।

जिन शासन में प्रतिपादित नय विवक्षा के अनुसार नय वस्तुतःवस्तु के अंशमात्र को ग्रहण करता है। नय चक्र में इस कथन का प्रतिपादन निम्नलिखित प्रकार से किया गया है-

जं णाणीण वियप्पं सुदासयं वत्थुअंस संगहणं।
तं इह णयं पउत्तं णाणी पुण तेण णाणेण॥ - नयचक्र, 172

अर्थात् श्रुतज्ञान का आश्रय लिए हुए ज्ञानी का जो विकल्प वस्तु के अंश को ग्रहण करता है उसे नय कहते हैं और उस ज्ञान से ज्ञानी होता है।

व्यवहार नय कीभांति निश्चय नय भी वस्तु के अंश को ग्रहण करता है, न कि अभेद/पूर्णवस्तु को। दोनों ही नय वस्तु के अंश के यथार्थ प्रतिपादक हैं, अतः सापेक्ष दोनों नय मिथ्या नहीं हैं और निरपेक्ष दोनों नय मिथ्या हैं। इस सम्बन्ध में नयचक्र का निम्न कथन महत्वपूर्ण है-

ण दु णयपक्खो मिच्छा तं पि य णेयंत्तदव्वसिद्धियरा।
सियसद्दसमारूढं जिणवयणविणिग्गयं सुद्धं।।

- नयचक्र, गाथा-293

अर्थात् जिनेन्द्र देव के वचन से विनिर्गत 'स्यात्' शब्द से समारूढ़ नयपक्ष भी मिथ्या नहीं है। क्योंकि वह एकान्त से द्रव्य की सिद्धि नहीं करता है और वह शुद्ध है। यहाँ 'शुद्ध' शब्द से निश्चय नय नहीं समझकर पूर्वापर दोषरहित समझना चाहिये, जैसाकि प्रतिपादित है-

"तस्स मुहग्गद वयणं पुव्वापर दोस विरहियं सुद्धं।"

-नियमसार, गाथा-7

इससे पूर्व कसाय पाहुड की टीका में भी इसका प्रतिपादन मिलता है-

जिणवयण णिच्च सच्चा सव्वणया पर वियालणे मोहा।
ते उण ण दिट्ठसमओ विभयइ सच्चे व अलिए वा॥

- भाग-1, पृ० 256

वे सभी नय अपने अपने विषय का कथन में समीचीन हैं और दूसरों नयों का विचार करने में मोहित है। **अनेकान्त रूप समय (आगम) के ज्ञाता पुरूष यह नय सच्चा और नय झूठा है-ऐसा विभेद नहीं करते हैं।**

इसी प्रकार सभी नय भूतार्थ ही हैं। किसी नय को अभूतार्थ कहना जिनागम की अवहेलना ही होगी।

सम्पूर्ण समय पाहुड़ ग्रंथराज नव पदार्थो को भूतार्थ (व्यवहार और निश्चय) नय से ज्ञान कराता है, जैसा कि उसकी गाथा -"भूयत्थेण अभिगदा...............। से स्पष्ट है।

भूतार्थ से जाने गए जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष सम्यक्त्व है। यहाँ पर आचार्य ने भूतार्थ पद देकर निश्चय और व्यवहार दोनों नयों का समावेश किया है और दोनों नयों की सापेक्षता से ही गाथा में वर्णित सम्पूर्ण पदार्थों की सिद्धि होती है और दोनों सापेक्ष नय ही सम्यक्त्व युक्त ज्ञान के साधन हैं और इन्हें भूतार्थ जानना चाहिये।

व्यवहारनय भूतार्थ है

समय-पाहुड़ की प्राचीन प्रतियों में ग्यारहवीं गाथा का मूल पाठ निम्नलिखित प्रकार से मिलता है

ववहारो भूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवइ जीवो।।

(1) ताड़पत्रीय प्रति, श्रवणबेलगोला।

(2) समय-प्राभृत पं० गजाधर लाल, सनातन जैनग्रन्थमाला वी.नि. सं. 2440. 1914

(3) समय-प्राभृत श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ, भारतवर्षीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था, कलकत्ता वी.नि.सं. 2468

(4) समयसार-परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ, श्री दि. जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ वी.नि.सं. 2469

उपर्युक्त गाथा की संस्कृत छाया निम्नलिखित प्रकार से की गई है-

'व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो दर्शितस्तु शुद्धनयः।
भूतार्थमाश्रितः खलु सम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः॥

व्यवहारनय अभूतार्थ अर्थात् असत्यार्थ है, शुद्ध अर्थात् निश्चयनय भूतार्थ सत्य है। निश्चय के आश्रित जीव सम्यग्दृष्टि होता है।

व्यवहार नयो हि सर्व एवाभूतार्थत्वादभूतार्थं प्रद्योतयति, शुद्ध नय एक एव भूतार्थत्वात् भूतमर्थं प्रद्योतयति। -आत्मख्याति टीका

व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ हैं इसलिए वह अविद्यमान असत्य अभूत अर्थ को प्रगट करता है। शुद्ध नय एक ही भूतार्थ होने से विद्यमान सत्यार्थ अर्थ को प्रगट करता हैं। -पं. परमेष्ठीदास कृत अनुवाद

इस गाथा की छाया के अनुसार ऐकान्तिक अर्थ करने के कारण तथा मूल गाथा के प्रतिकूल होने से विवादास्पद रहा है। जयसेन को भी उपर्युक्त अभूतार्थ अर्थ स्वीकार्य नहीं था इसीलिए उसका निम्न विकल्प तात्पर्यवृत्ति टीका में प्रस्तुत किया है।

'द्वितीय व्याख्यानेन पुनः **ववहारो अभूदत्थो** व्यवहारोऽभूतार्थो भूदत्थो भूतार्थश्च **देसिदो** देशितः देशितः कथितः न केवलं व्यवहारो देशितः **सुद्धणओ** शुद्धनिश्चयोपि। दु शब्दादयः शुद्ध निश्चयनयोपीति व्याख्यानेन भूताभूतार्थभेदेन व्यवहारोऽपि द्विधा, शुद्धनिश्चयाशुद्धनिश्चयभेदेन निश्चय नयोपि द्विधा इति नयचतुष्टयम्।।'

द्वितीय व्याख्यानुसार व्यवहार को अभूतार्थ और भूतार्थ कहा है। मात्र व्यवहार ही नहीं, अपितु शुद्ध निश्चयनय भी भूतार्थ है। दु पद से संकेतित है कि जिस प्रकार भूतार्थ और अभूतार्थ के भेद से व्यवहार दो प्रकार का है उसी प्रकार शुद्ध निश्चय और अशुद्ध निश्चय के भेद से निश्चयनय के भी दो भेद है। इस प्रकार भूतार्थ कोटिक चार नय हैं।

संस्कृत छाया में संस्कृत व्याकरण के '**एङः पदान्तादति**' सूत्र के अनुसार अ खण्डाकार का प्रयोग पूर्वरूप मानकर हुआ है। जबकि प्राकृत के अनुसार पूर्वरूप नहीं होता। यदि पूर्वरूप होता तो समयपाहुड़ की निम्नलिखित गाथाओं में भी 'ओकार' के बाद 'अकार' होने से वहां भी पूर्वरूप होना चाहिए था। जो कि नहीं हुआ है। जैसे-

जह णवि सक्कमणज्**जो अ**णज्जं भासं विणा दु गाहेदुं — गाथा-8

तो तं अणुचरदि पु**णो अ**त्थत्थीओ पयत्तेण — गाथा-17

एवमेव ववहा**रो अ**ज्झ वसाणादि अण्णभावाणं — गाथा-48

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि कोहोहं — गाथा-94

तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेदि धम्मादी — गाथा-95

जई एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी जदा होहि — गाथा-121

णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाण मओ अणाणिस्स — गाथा-126

उदओ असंजमस्स दु जं जीवाणं हवेई अविरमणं — गाथा-133

कम्मोदयेणं जीवो अण्णाणी होहि णादव्वो — गाथा-162

हेदु चदुवियप्पो अट्ठवियपस्स कारणं भणिदं — गाथा-187

अण्णाण तमोच्छण्णो आदं सहाव अयाणंतो — गाथा-185

अप्पाणं झांयतो दंसण णाण मओ अणण्णमओ — गाथा-189

जहमज्जं पिबमाणो अरदिभावेण ण पुरिसो — गाथा-196

अप्पाण मयाणंतो अणप्पयं चावि सो अप्पाणं तो — गाथा-202

मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज — गाथा-208

अपरिग्गहो अणिच्छो — गाथा-210

अपरिग्गहो अणिच्छो — गाथा-211

अपरिग्गहो अणिच्छो — गाथा-212

अपरिग्गहो अणिच्छो — गाथा-213

सो भूदो अण्णाणी — गाथा-250

जो अप्पणादु मण्णदि — गाथा-253

सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण	गाथा-268
सव्वे करेदि जीवो अज्झवसाणेण	गाथा-269
कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी	गाथा-274
मोक्खं असद्दहंतो अभवियसतो दु जो अधीएज्ज	गाथा-274
बंधो छेदे दव्वो सुद्धो अप्पा य घेतव्वो	गाथा-295
बंधो छेदे दव्वो सुद्धो अप्पा य घेतव्वो	गाथा-296
बंधो छेदे दव्वो सुद्धो अप्पा य घेतव्वो	गाथा-297
बंधो छेदे दव्वो सुद्धो अप्पा य घेतव्वो	गाथा-298
बंधो छेदे दव्वो सुद्धो अप्पा य घेतव्वो	गाथा-299
जाणंतो अप्पयं कुणदि	गाथा-326
भणिदो अण्णेसु	गाथा-365

-समयसार से उद्धृत (4)

उक्त सन्दर्भों से फलित होता है पूर्वरूप का नियम संस्कृत का है और प्राकृत में प्रयुक्त नहीं होता। कदाचित् 'ओ' के बाद 'अ' होने पर 'अ' पूर्वरूप इष्ट होता तो अनादि मूलमंत्र में '**णमोअरहंताणं**' के स्थान पर '**णमोऽरहंताणं** पाठ होता।

ऐसा प्रतीत होता है कि टीकाकार आचार्य श्रीअमृतचन्द्र ने संस्कृतछाया का अनुगमन करते हुए ही 'व्यहारोऽभूतार्थो' मानकर टीका की है। ध्यान देने योग्य बात है कि जिस प्रकार आचार्य श्री जयसेन ने प्राकृत पदानुसारिणी

टीका की है उस प्रकार आचार्य श्री अमृतचन्द्र ने प्राकृत पदों का प्रयोग अपनी टीका में नहीं किया है। अत: स्पष्ट है कि आत्मख्याति टीका का आधार गाथा की संस्कृतछाया मात्र ही था।

उपर्युक्त गाथा का छन्दशास्त्र की दृष्टि से विचार करते हुए यह कहा जाता है कि प्रथम पाद में अक्षर अधिक होने के कारण 'अ' का पूर्वरूप मानते हुए 'अभूतार्थ' अर्थ मान्य किया जा रहा है, परन्तु यह उचित प्रतीत नहीं होता। मूलग्रन्थ कर्ता छन्दभंग के दोष की निवृत्ति **ववहार अभूदत्थो/ववहाराभूदत्थो** पद देकर कर सकते थे परन्तु ऐसा नहीं किया। जिससे आचार्य श्री अमृतचन्द्र के अभिप्राय की पुष्टि नहीं होती यत: मूल आचार्य को 'ववहारो भूदत्थो' पाठ ही इष्ट था। अभूदत्थो नहीं। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि समयपाहुड़ के उत्थानिका के प्रकरण में उक्त गाथा है और उत्थानिका की गाथायें हमेशा ग्रन्थ के हार्द का संक्षेप में स्पष्ट संकेत करने वाली होती है जिसका विस्तार सम्पूर्ण ग्रन्थ में होता है।

प्रकृत गाथा के भूदत्थो पद का संस्कृत भाषा के अनुसार सत्यार्थ अर्थ भी किया जाता है, जबकि समय पाहुड़ के कर्ता को सत्यार्थ अर्थ इष्ट नहीं है यदि उन्हें 'सत्य' अर्थ इष्ट होता तो स्पष्ट अर्थ के द्योतक गाथा पाठ '**ववहारो सच्चत्थो**' दे सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्हें तो '**भूदत्थो**' ही इष्ट था जिसका संकेत आगमिक और जिनोपदिष्ट नय की ओर है। नय जिनवचन रूप होते हैं और नित्य सत्य होते हैं जैसा कि निम्नांकित गाथा से स्पष्ट है।

जिणवयण णिच्चसच्चा सव्वणया पर वियालणे मोहा।
ते उण ण दिट्ठसमओ विभयइ सच्चे व अलिए वा।।

–कसायपाहुड, भाग 1 पृ. 257

जिनोपदिष्ट सभी नय अपने-अपने विषय का कथन करने से समीचीन है और नित्य सत्य और दूसरे नयो का विचार करने में मोहित है और अन्य नयों के बारे में मौन हैं, वे उसके मित्र हैं विरोधी या झूठे नहीं। अनेकान्त रूप समय (आगम) के **ज्ञातापुरुष यह नय सच्चा है और यह नय झूठा है। ऐसा विभेद नहीं करते हैं।**

अत: व्यवहार नय भूतार्थ है जिसका अर्थ है कि व्यवहार जिनोपदिष्ट है और वस्तु के अंश को ग्रहण करने वाला नय है तथा अन्य नयों की सापेक्षता से प्रमाण की ओर ले जाने वाला है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भी आचार्य श्री अमृतचन्द्र शंकराचार्य के बाद में हुए उस समय में सम्भवत: अद्वैतवाद का प्रचण्ड प्रचार था और अद्वैतवाद 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' की उक्ति सर्वत्र बहुचर्चित थी। हमारी दृष्टि में आचार्य अमृतचन्द्र ने उस उक्ति को आत्मसात् करते हुए ब्रह्म के स्थान पर आत्मा तथा व्यवहार को लोकव्यवहार रूप माया मानते हुए मिथ्या प्ररूपित किया हो तथा शंकराचार्य का जो 'अध्यास' मिथ्या है उसी का अनुसरण करते हुए व्यवहार नय को मिथ्या निरुपित कर दिया। यह भी स्मरणीय है कि उक्त काल जिन-शासन के लिए संक्रमणकाल का दौर था और ऐसे समय में जिन-शासन की रक्षा का श्रेय आ. श्री अमृतचन्द्र को ही जाता है। हालांकि इससे व्यवहार-चारित्र ही हानि भी हुई। परन्तु आज गणतन्त्र के युग में न तो तत्कालीन परिस्थितियां है और न ही वाद-विवाद शास्त्रार्थ की जय-पराजय दृष्टि। अत: अनेक नयों की अलग अलग निरुक्तियां करने की आवश्यकता नहीं है। आश्चर्य है कि कब और कैसे यह प्रचलित हो गया कि आगम के नय अलग होते हैं और अध्यात्म के नय दूसरे। अध्यात्म आगम से बहिर्भूत नहीं हो सकता और न ही इस दृष्टि को मान्य ही किया जा सकता है कि आगमिक नय अध्यात्म में व्यवहृत नहीं होते या आध्यात्मिक नय आगमिक नहीं होते।

अन्ततः आचार्य अमृतचन्द्र की अद्वैतानुसारिणी टीका को पढ़कर आ. कुन्दकुन्द पर शंकराचार्य का प्रभाव मानते हुए इस मिष्कर्ष को बल देने की प्रवृत्ति बढ़ी है कि वे शंकराचार्य के समकालीन या बाद के आचार्य है जबकि गाथाओं में कहीं भी शंकर के अद्वैतवाद का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। यह निर्विवाद सिद्ध है कि आचार्यकुन्दकुन्द श्रुतकेवली के साक्षात् शिष्य थे। जैसाकि निम्नलिखित गाथा से स्पष्ट है-

वारस अंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउल वित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरु भयवओ जयओ।

विपुल विस्तार वाले बारह अंग और चौदह पूर्व ज्ञान के बोधक/निश्चायक गुरु श्रुतज्ञानी भगवान भद्रबाहु जयवन्त हों।

अस्तु, उक्त गाथा के 'ववहारो भूदत्थो' जिसका अर्थ व्यवहार भूतार्थ है जिनोपदिष्ट तथा वस्तु के अंश को ग्रहण करने वाला नय मानते हुए तथा आगमिक नयानुसार वस्तुतत्व का चिन्तन एवं ज्ञान करते हुए स्वपरकल्याणोन्मुख हों। यही भावना भाता हूँ।